एक जलती मशाल

सत्यशोधक महात्मा फुले

प्रोफेसर सुभाष सैनी

एक जलती मशाल

सत्यशोधक महात्मा फुले

प्रोफेसर सुभाष सैनी

सैनी समाज सभा, कुरुक्षेत्र

सत्यशोधक महात्मा फुले : एक जलती मशाल

लेखक : प्रोफेसर सुभाष सैनी, हिंदी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
संपर्क - 9416482156

संस्करण प्रथम, 11-अप्रैल 2023
प्रकाशकः सैनी समाज सभा, कुरुक्षेत्र

आवरणः कीर्ति सैनी

मुद्रकः 21 सेंचुरी पब्लिकेशन, पटियाला

मूल्यः **₹ 50.00**

SatyaShodhak Mahatma Phule : Ek Jalti Mashal

सत्यशोधक फाउंडेशन की संस्थापक
स्वर्गीया श्रीमती विपुला जी
की स्मृति में सादर

अनुक्रम

महात्मा फुले को मैं अपना गुरु मानता हूँ।

- बाबासाहब डॉ. भीमराव आंबेडकर

इस प्रयास के अपेक्षित परिणाम निकलेंगे

महात्मा जोतिबा फुले व माता सावित्रीबाई फुले ने अपने जीवन में कष्ट उठाकर, अपने समाज को सुंदर बनाने का कार्य किया। सामाजिक भेदभाव, धर्म के नाम पर शोषण, अज्ञानता,अंधविश्वास व रूढ़िवाद के प्रति लोगों को जागरूक किया। समाज के पददलित-वंचित वर्गों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले तथा उनमें शिक्षा की इच्छा पैदा की। अपने कार्यों व साहित्य द्वारा किसानों को जगाया।

समाज में सत्य की स्थापना तथा न्यायपूर्ण समाज बनाने के लिए अनेक कदम उठाए। सत्यशोधक समाज के माध्यम से समाज में बराबरी, भाईचारा, आजादी व लोकतंत्र के कार्य किए। उनकी 'गुलामगिरी' तथा 'किसान का कोड़ा' पुस्तक ने समाज को झकझोरा। संविधान निर्माता बाबा साहेब डा. भीमराव अंबेडकर ने उनको अपना गुरु माना। उनके विचारों से प्रभावित हुए और समता-स्वतंत्रता-बंधुता को भारतीय संविधान का अनिवार्य हिस्सा बनाया।

आजादी के 75 वर्ष बाद भी महात्मा फुले, माता सावित्रीबाई फुले व बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर के सपनों का समाज नहीं बना है। जोतिबा फुले का साहित्य अभी समाज के सभी वर्गों व व्यक्तियों तक नहीं पहुंचा है। समाज को अभी और जागरूक होना है।

महात्मा फुले के विचारों की सामाजिक जीवन में स्थापना हो इस उद्देश्य से महात्मा जोतिबा फुले जयंती के अवसर पर 11 अप्रैल 2023 को सैनी समाज सभा की ओर से यह पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। आशा है कि इस प्रयास के अपेक्षित परिणाम निकलेंगे। आगे भी इस तरह के प्रयास जारी रहेंगे।

गुरनाम सिंह सैनी
प्रधान, सैनी समाज सभा, कुरुक्षेत्र

जोतीराव फुले सच्चे महात्मा थे

- महात्मा गांधी

मुक्ति संघर्षों की प्रेरणा बने

फुले दम्पति (जोतिबा फुले - सावित्रीबाई फुले) का आगमन भारतीय इतिहास को मोड़ देने वाली घटना है। सामाजिक क्रांति के जनक जोतिबा फुले और भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले ने समाज में सत्य, न्याय, समानता, स्वतंत्रता और मानव भाईचारे की स्थापना के लिए अनेक क्रांतिकारी कदम उठाए। क्रांतिकारी कार्यों के लिए रूढ़िवादी समाज की प्रताड़नाओं को सहन किया, लेकिन पूरी जिंदगी दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करते रहे।

उन्नीसवीं शताब्दी में कई समाज सुधारकों ने समाज सुधार के अनेक आंदोलनों की शुरुआत की। राजा राम मोहन राय, केश्वचंद्र सेन, देवेंद्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे महान सुधारकों ने भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों पर कुठाराघात किया। इन समाज सुधारकों का संबंध मध्यवर्ग और उच्चवर्ण से था, इसलिए इनका प्रभाव भी इन्हीं वर्गों तक था। इन आंदोलनों का कार्यक्षेत्र स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, अनमेल विवाह तक सीमित था।

फुले-दम्पति का संबंध समाज के निम्न-वर्ग से था और इनका प्रभाव समाज के निचले वर्गों शूद्रों-अतिशूद्रों और किसानों तक फैला था। जाति-व्यवस्था का खात्मा, छुआछूत का खात्मा, धार्मिक-पाखण्डों व अंधविश्वासों का निराकरण, भेदभावपूर्ण जातिगत व लैंगिक मूल्यों की सामाजिक जीवन से समाप्ति, धार्मिक आवरण में गरीबों का शोषण, सामाजिक विषमता, अज्ञानता, ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक वर्चस्व के स्थान पर समाज में लैंगिक समानता, सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, वैज्ञानिक व तार्किकता की स्थापना इनके आंदोलनों के उद्देश्य था।

समाज में ब्राह्मणवादी (वर्ण-व्यवस्था और पितृसत्ता) विचारधारा के वर्चस्व से शूद्रों-अतिशूद्रों को ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित हुए जिससे उनके विकास के रास्ते बंद हो गए थे। सावित्रीबाई-जोतिबा फुले ने भेदभावकारी विचारधारा के विरूद्ध बगावत करने के लिए आंदोलन चलाया और लोगों को जागृत किया।

सत्य और न्याय के लिए संघर्षरत लोगों के लिए सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले का जीवन प्रेरणादायी है। इनके जीवन संघर्षों और चिंतन का भारतीय समाज पर विशेषकर दलितों-वंचितों-शोषितों के आंदोलनों और जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। फुले-दम्पति द्वारा किए गए संघर्ष मुक्तिदाता बाबा साहेब डा. भीमराव आंबेडकर की संघर्षों व चेतना की प्रेरणा बने।

ज्यों-ज्यों भारतीय समाज के शोषित वर्गों में सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता बढ़ रही है अपने इतिहास और महापुरुषों के जीवन के बारे में जानने की उनकी इच्छा भी प्रबल हो रही है। इसी का परिणाम है कि लंबे समय तक उपेक्षित रहे नायकों के जीवन, कार्यों और उनके योगदान पर साहित्य प्रकाशित होने लगा है।

जोतिबा फुले ने साहित्य में अपने समय के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्ति दी। तत्कालीन साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष, धर्मों की श्रेष्ठता की बीच संघर्ष, उच्च-वर्ग यानी भट्टजी- सेठजी तथा शूद्र-अतिशूद्र के बीच संघर्ष, पुरुष-वर्चस्व तथा स्त्री-मुक्ति के बीच संघर्ष, शास्त्रीय-वर्चस्वी भाषाओं तथा लोकभाषाओं के बीच संघर्ष, शास्त्रीय ज्ञान तथा अनुभवजन्य ज्ञान के बीच संघर्ष, विभिन्न सामाजिक वर्गों का सत्ता की निकटता के संघर्ष को यथार्थपरक ढंग से चित्रित किया।

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले के जीवन-संघर्ष और सामाजिक बदलाव के कार्य अविभाज्य है। उद्देश्य, कार्य, सोच में एकता तथा एक-दूसरे के प्रति समर्पित होते हुए भी दोनों का व्यक्तित्व विशिष्ट है । यहां हम जोतिराव फुले का जीवन प्रकाशित कर रहे हैं। यहां इनके काम और उसके प्रभाव का मूल्यांकन नहीं, बल्कि इनके जीवन और कार्यों का परिचय दिया गया है।

आशा है ये प्रयास सार्थक होगा

प्रोफेसर सुभाष चंद्र सैनी
हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

"जिस ज़माने में महात्मा फुले ने स्त्री-शिक्षा के प्रसार तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए तीव्र संघर्ष किया, वह जमाना बहुत कठिन था। ऐसे कामों के लिए कहीं से भी सहायता मिलना असंभव था। भारतीय लोकतंत्र में किसान और मजदूरों की जैसे-जैसे उन्नति होगी, वैसे-वैसे ही इतिहास में महात्मा फुले का व्यक्तित्व अधिकाधिक उभर कर सामने आएगा।"

- पं. जवाहरलाल नेहरू

जोतिबा फुले: जीवन क्रम

जन्म पूना में, पिता गोविंद राव व माता चिमणाबाई	11 अप्रैल 1827
पंतोजी (पुराने ब्राह्मण अध्यापक) की पाठशाला में मराठी शिक्षा	1834-38
सावित्रीबाई से विवाह	1840
मिश्नरी स्कूल में माध्यमिक (अंग्रेज़ी) शिक्षा	1841-47
लहुजीबुवा से व्यायाम व क्रान्तिकारी विचारों की प्रेरणा	1847
टॉमस पेन के 'राइट्स ऑफ मैन' का अध्ययन	1847
ब्राह्मण मित्र के विवाह की बारात में हुई अपमानजनक घटना	1848
शूद्रातिशूद्रों को लिए कन्याशाला की स्थापना	1848
अतिशूद्रों को शिक्षा के कारण पत्नी समेत गृहत्याग	1849
मराठी प्रकाशनों को अनुदान देने की माँग करनेवाले सुधारकों को	1849
चिपळूणकरवाड़ा और रास्ता पेठ, पुणे में कन्याशाला की स्थापना	1851
पूना लाइब्रेरी की स्थापना	1852
कन्याशाला के अनुदानप्राप्ति हेतु राज्यपाल को पत्र	5 फरवरी,1852
मि. कैंडी की अध्यक्षता में शिक्षा कार्य के लिए सम्मान	16 नवम्बर 1852
3000 लोगों की उपस्थिति में कन्यास्कूलों की दूसरी वार्षिक परीक्षा	12 फरवरी 1853
स्काटिश मिशनरियों के स्कूल में अंशकालिक अध्यापक की नौकरी	1854
शिक्षा का महत्त्व पर केंद्रित 'तृतीय रत्न' नाटक का लेखन	1855
रात्रिशाला की स्थापना	1855
हत्यारों द्वारा महात्मा फुले की हत्या का प्रयास	1856
अछूत छात्राओं की परीक्षा	2 फरवरी 1856
पाठशाला के व्यवस्थापक-मंडल से निवृत्ति	1858
विधवा-पुनर्विवाह में सहायता	1860
बालहत्या-प्रतिबंधक गृह की स्थापना	1863
तुकाराम तात्या पडवळकृत 'जातिभेद विवेकसार' ग्रंथ का प्रकाशन	1865
पिता गोविंदराव की मृत्यु	1868
घर का कुआँ अछूतों के लिए खोल दिया	1868
'छत्रपति राजा शिवाजी भोसला का पँवाड़ा' की रचना	जून 1869
'शिक्षा विभाग के ब्राह्मण पंतोजी' की रचना	जून 1869

'ब्राह्मणों की चालाकी' पुस्तक का लेखन	1869
भगवान परशुराम की नोटीस	13 अगस्त 1872
'गुलामी' पुस्तक का लेखन	1 जून 1873
सत्यशोधक समाज की स्थापना	24 सितंबर 1873
स्वामी दयानंद सरस्वती की शोभायात्रा	5 सितंबर 1875
सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट का प्रकाशन	24 सितंबर 1876
सत्यशोधक समाज की वार्षिक रिपोर्ट का प्रकाशन	20 मार्च 1877
पुणे नगरपालिका की सदस्यता	1876-82
शराब की दुकानों के लाइसेन्स के विरुद्ध	18 जुलाई 1880
दलितों की शिक्षा संबंधी हंटर आयोग को निवेदन	19 अक्तूबर 1882
जेल से छूटने पर तिलक, आगरकर का सम्मान	26 अक्तूबर 1882
‘किसान का कोड़ा’ पुस्तक का लेखन	18 जुलाई 1883
बालविवाह और विधवा की स्थिति का निवेदन	4 दिसंबर 1884
मराठी साहित्य सम्मेलन में उपस्थिति से इन्कार	11 जून 1885
सत्सार- 1 पुस्तक की रचना	13 जून 1885
सत्सार -2 पुस्तक की रचना	अक्तूबर 1885
सत्यशोधक समाज का झंडा जुलूस	24 सितंबर 1885
'इशारा' पुस्तक की रचना	1 अक्तूबर 1885
बिना पुरोहित विवाह का जुन्नर का मुकदमा जीता	29 मार्च 1886
मामा परमानंद को पत्र	2 जून 1886
सत्यशोधक समाज पूजाविधि ग्रंथ का प्रकाशन	जून 1887
वसीयतनामा लिखा	10 जुलाई 1887
वसीयतनामा पंजीकरण	18 जुलाई 1887
ड्यूक ऑफ कनाट के सम्मान समारोह में फुले की खरी-खरी	2 मार्च 1888
जनता द्वारा सम्मान और महात्मा की पदवी	11 मई 1888
पुत्र यशवंत का विवाह	4 फरवरी 1889
सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक लेखन (मृत्योपरांत 1891 में प्रकाशित)	1 अप्रैल 1889
निर्वाण	28 नवम्बर 1890

पृष्ठभूमि व परिवेश

महात्मा जोतिराव फुले को आधुनिक भारतीय सामाजिक क्रांति का जनक कहा जा सकता है। जोतिराव फुले ने पूरी जिन्दगी भारतीय समाज में मौजूद धर्मभेद, वर्णभेद, जातिभेद, लिंगभेद के खिलाफ कार्य किया। वे जैविक बुद्धिजीवी थे। जिन्होंने अपने अनुभवों से ही अपने जीवन-दर्शन का निर्माण किया। जोतिराव फुले का समाज में कार्य का काल उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। महाराष्ट्र में पूना शहर और उसके आस पास का इलाका उनका कार्यक्षेत्र रहा।

अंग्रेजी शासन की स्थापना (सन् 1818) से पहले महाराष्ट्र में पेशवा शासन था, इस शासन में जाति के आधार पर घोर भेदभाव होता था। ऊंची कही जाने वाली जातियां विशेषकर ब्राह्मण इस शासन में विशेष लाभ प्राप्त करती थी। सामाजिक तौर निम्न कही जाने वाली जातियों को सड़क जैसी सार्वजनिक जगहों पर भी बराबरी से चलने का अधिकार नहीं था। ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित शूद्रों-अतिशूद्रों की स्थिति गुलामों से बेहतर नहीं थी।

यद्यपि अंग्रेजी शासन जाति के आधार पर कानूनी तौर पर भेदभाव नहीं करता था, लेकिन जाति-व्यवस्था को तोड़ने के कोई प्रयास नहीं करता था। अंग्रेजी शासन में विभिन्न विभागों में उच्च जातियों विशेषकर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। शिक्षालय हो या न्यायालय सभी जगहों में जाति विशेष (ब्राह्मण) से ताल्लुक रखने वाले कर्मचारियों का बाहुल्य था। जाति नियंत्रित समाज में शासन भी जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रस्त था।

अंग्रेजों ने अपने शासन के विस्तार व उस पर मजबूत पकड़ बनाने के लिए अनेक उपक्रम किए। इसी प्रक्रिया में संचार के साधनों और उद्योगों के विकास हुआ। इसके फलस्वरूप रूढ़िवादी सोच पर करारी चोट पड़ने लगी। लोगों में समान व्यवहार और स्वतंत्रता प्राप्ति की चाह बढ़ रही थी और ब्राह्मणवादी सोच की जकड़ ढीली पड़ रही थी।

समाज में आजादी के ख्याल जोर मार रहे थे। जिसका परिणाम था सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम। भारतीय समाज के निचले पायदान पर रहने वाले शूद्रों और अतिशूद्रों को भी अपनी गुलामी जैसी स्थिति का बोध हो रहा था। उनको अहसास हो गया था कि वर्ण-व्यवस्था के माध्यम से समाज के उच्च वर्गों ने ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित करके उनके विकास के रास्ते बंद किए हैं। इनको प्राप्त करके ही वे मानवीय गरिमा को प्राप्त कर सकते हैं।

फुले ने शूद्र-अतिशूद्र में मानव अधिकारों की चेतना पैदा करने के लिए अपना जीवन समर्पित किया। फुले ने अपने समाज की वास्तविकता को साहित्य में स्थान दिया।

वास्तविकता के कारणों की तलाश की और इनको दूर करने के लिए समाज को जागृत किया।

फुले परिवार में फूल खिला

जोतीराव फुले का जन्म 11 अप्रैल सन् 1827 ई. में महाराष्ट्र के पूना शहर में हुआ। इनके पिता का नाम गोविंद राव व माता का नाम चिमाबाई था। जोतिबा के दादा का नाम शेटीबा था। शेटिबा के तीन पुत्र थे - राणोजी, गोविंदा और कृष्णा। मूलतः कटगुण गांव के रहने वाले थे और गोन्हे कहलाते थे। गांव के पाटिल से किसी मामले में तकरार होने पर पूना आकर बस गए थे। जोतिराव के पिता फूलों का कारोबार करते थे, इसीलिए फुले कहलाते थे।

जोतिराव अभी केवल नौ महीने के थे, जब उनकी माता चिमाबाई का देहांत हो गया। पिता गोविंदराव के सामने जोतिबा के लालन-पालन की समस्या आ खड़ी हुई। सगुणाबाई ने जोतिबा का पालन-पोषण का जिम्मा लिया और बहुत लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया।

परवरिश ही नहीं की अपितु मुझे इंसान भी बनाया

जोतिराव फुले की मां चिमाबाई और घोंडाबाई दो बहनें थी। घोंडाबाई का विवाह हड़पसर के दयासागर परिवार में हुआ। सगुणाबाई घोंडाबाई की बेटी थी और जोतिबा फुले की मौसेरी बहन। सगुणाबाई का जन्म दयासागर परिवार में हुआ था इसलिए उन्हें सगुणा दयासागर भी कहा जाता है। सगुणाबाई के पति का देहावसान हो गया। अपने मायके में भी कोई सहारा नहीं था। उसने जॉन नामक ईसाई मिशनरी के घर सेविका का काम किया।

जोतिबा फुले के जीवन व व्यक्तित्व निर्माण में सगुणाबाई का महत्वपूर्ण योगदान है। जब पिता गोविंद राव ने ब्राह्मणों के विरोध के कारण जोतिबा को स्कूल से हटा लिया तो सगुणाबाई ने ईसाई पादरी लिजिट साहब और फारसी के शिक्षक मुंशी गफ्फार बेग से गोविंदराव को समझाने के लिए प्रार्थना की। इन विद्वानों की सलाह पर जोतिराव के पिता ने उनको चौदह वर्ष की उम्र में सन् 1841 ई. में एक स्टाकिश मिशनरी स्कूल में भर्ती करवा दिया।

सगुणाबाई के मानवीय व्यवहार से जोतीराव के व्यक्तित्व में मानवीय-दृष्टि पनपी। वह कहती थी कि 'हमारा जोती महार, मांगों की सेवा करे, उनके उत्थान के लिए अपना जीवन लगाए।' जोतीराव उनका बहुत आदर करते थे, जोतिबा फुले ने सगुणाबाई को अपनी निर्मिकाचा शोध पुस्तक समर्पित करते हुए लिखा है कि "सत्यस्वरूप सगुणाबाई क्षीरसागर को, आपने मेरी केवल परवरिश ही नहीं की अपितु मुझे इंसान भी बनाया। मैंने आप ही से यह सीखा कि दूसरों के बच्चों पर किस तरह प्रेम करें। इसलिए कृतज्ञता के साथ प्रस्तुत पुस्तिका रचियता की ओर से आपको नजराना।"

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले इनको 'आऊ' कहकर बुलाते थे। सावित्री बाई फुले ने काव्यफुले संग्रह में कविता लिखी 'हमारी आऊ'। महात्मा जोतिबा फुले ने सगुणाबाई के बारे में लिखा हैः "मां जैसा दूसरा देवता नहीं, लेकिन जिसने मुझे जन्म दिया वह मुझे याद नहीं, मेरे जीवन की यह कमी सगुणाबाई ने पूरी की। उसकी कामना थी कि मैं

बड़ा फादर बनूं। न जाने क्यों वह मुझे ज्ञानबोध कराती थी। बचपन में तो उसने ममता से मेरी सेवा-सुश्रुषा की। कभी न घटने वाली ज्ञान संपति उसी ने मुझे दी। धन्य है मेरी आऊ।”

सगुणाबाई ने सावित्रीबाई फुले को भी शिक्षा के लिए प्रेरित किया और फुले-दम्पति द्वारा खोले गए स्कूलों में शिक्षा के लिए सहायता की। 6 जुलाई 1854 को एक रिश्तेदार के घर में हैजे की बीमारी ने सगुणाबाई को मौत की नींद सुला दिया। ममता और मानव सेवा का जो पाठ सगुणाबाई ने पढ़ाया वो जोतिबा के कार्यों में झलकता है।

वास्तविक जीवन व तार्किकता ही मान्यताओं की कसौटी

जोतीराव को परम्परागत सोच से अलग बिल्कुल नए ढंग से समाज को देखने-समझने में उनकी शिक्षा-सामग्री, विभिन्न वर्गों के उनके दोस्तों का गहरा प्रभाव पड़ा। उनके दोस्तों में मुस्लिम भी थे, ब्राह्मण भी थे। शिक्षकों में ईसाई व मुस्लिम थे और अस्पृश्य समाज से संबंधित लहुजी बुवा मांग भी थे जिनसे गतका-फरी, पट्टा-तलवार चलाने और निशानेबाजी की शिक्षा ली।

> “अब सबसे पहले मैं उनके प्रति अपना धन्यवाद व्यक्त करता हूँ, जब मैं छोटा था और मेरे इर्द-गिर्द के मेरे पड़ोसी मुसलमान साथी थे, उनकी मेल-जोल से मैंने मतलबी हिंदू धर्म के बारे में और उसके जातिभेद आदि की कई झूठी मान्यताओं के बारे में जो कुछ सीखा, जाना है और सत्य विचार आने शुरू हुए हैं, वह सब उन्हीं की वजह से । मैं उनके उपकारों का स्मरण करता हूँ। फिर पूना के स्कॉच मिशन और सरकारी संस्थान का, जिनकी वजह से मुझे कुछ ज्ञान बोध हुआ है और मैंने यह जान लिया है कि मानव प्राणी के अधिकार क्या हैं। और जिन- जिन यूरोपियन धार्मिक लोगों ने रुपये-पैसे से मदद की है, उनका भी मैं आभारी हूँ। इसी प्रकार जिस अंग्रेज सरकार की स्वतंत्र शासन प्रणाली की वजह से ये विचार मैं निर्भय होकर बोल रहा हूँ, उस सरकार के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।” (किसान का कोड़ा पुस्तक के अंतिम शब्द उद्धृत महात्मा जोतिबा फुले रचनावली-1, पृ.-374)

जोतिराव ने वाशिंगटन व टामस पेन के जीवन-संघर्ष व विचारों का अध्ययन किया। टामस पेन की ‘राइट ऑफ मैन’ पुस्तक को गरीबों की बाईबल माना जाता है। इसमें उन्होंने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों को व्याख्यायित करते हुए मनुष्य

की स्वतंत्रता की हिमायत की है। थामस पेन की 'राइट ऑफ मैन' पुस्तक के अध्ययन ने फुले दम्पति की शूद्रों की स्थिति और आम लोगों के अधिकारों को समझकर उन्हें प्राप्त करने के संघर्ष की दिशा तय करने में बहुत मदद की।

जोतिबा फुले की सोच व व्यक्तित्व के निर्माण में स्टाकिश इसाई मिशनरी, वैज्ञानिक खोजों की जानकारी, अंग्रेजी शिक्षा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अमेरीका के इतिहास और वहां अश्वेतों के गुलामी के विरुद्ध मुक्तिकामी संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज को देख पाए। फ्रांस की क्रांति से उपजे स्वतंत्रता-समता-बंधुता के मूल्यों ने जोतिबा फुले को इतिहास दृष्टि प्रदान की। तर्क प्रणाली के कारण ही वे शास्त्रों व धर्मग्रंथों में व्यक्त झूठ-अवैज्ञानिकता और उसमें छिपे शोषण को चिह्नित कर पाए। अन्य समाज सुधारकों की तरह ग्रंथों-शास्त्रों का हवाला देकर कुप्रथाओं पर प्रहार करना उनकी प्रमुख शैली नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन व तार्किक आधार ही मान्यताओं की कसौटी है।

उन्होंने धर्म-ग्रंथों को ईश्वरीय रचना मानने से इनकार करते हुए उनमें व्यक्त भेदभावपूर्ण व शोषणपरक व्यवस्थाओं को सिरे से खारिज किया। धर्म-ग्रंथों में व्यक्त विचारों को युग की सीमाओं के संदर्भ में देखा समझा।

आदर्श दाम्पत्य संबंधों की बुनियाद बराबरी

सन् 1840 में जोतिबा फुले का विवाह सावित्रीबाई से हुआ। इस समय जोतिबा की उम्र 13 साल और सावित्रीबाई की उम्र 9 साल थी। सावित्रीबाई और जोतिबा फुले का विवाह दो महान शख्सियतों का मिलन था। इस जोड़ी ने मिलकर आधुनिक भारत का नक्शा बनाया।

सावित्रीबाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को महाराष्ट्र राज्य के सतारा जिले के नायगांव में हुआ। सावित्रीबाई फुले के पिता का नाम - खंडो जी पाटिल और माता का नाम लक्ष्मी था। सावित्रीबाई के तीन भाई भी थे - सिदु जी, सखाराम और श्रीपति। सावित्रीबाई इनमें सबसे बड़ी थी।

भारतीय आचार-संहिता, नैतिकता व संस्कारों में पत्नी को पति की अनुगामिनी के रूप में ही देखा गया। जोतिबा फुले व सावित्री के दाम्पत्य संबंधों ने पत्नी को बोझ व पुरुष पर आश्रित मानने वाली छवि को समाप्त कर दिया था। फुले-दम्पति की दृष्टि में बराबरी एक मूल्य के तौर पर था, इसी कारण सच्चे मायनों में अपनी जीवन साथी बनने में सफल हुए।

फुले दम्पति के घर छात्रावास में रहे महाडू वाघले नामक छात्र ने अपने संस्मरण में फुले दम्पति के बीच प्रगाढ़ प्रेम के बारे में लिखा है:

जोतिराव सावित्रीबाई का बहुत सम्मान करते थे और सावित्रीबाई उन्हें 'सेठजी' कहकर बुलाती थीं। उनके बीच सच्चा प्रेम था। जोतिबा फुले कभी ऐसा कोई कार्य नही करते थे जिसमे सावित्रीबाई की सहमति न होती। (हरि नरके; धन्यज्योति सावित्रीबाई फुले; एन सी ई आर टी सावित्रीबाई स्मृति व्याख्यान)

फुले दम्पति पति-पत्नी के साथ मानवता के काम में सहयोगी थे और एक-दूसरे के प्रति समर्पित थे। जोतिबा फुले ने सावित्रीबाई को शिक्षित किया।

सार्वजनिक जीवन में अपनी भूमिका निभाने का अवसर दिया तो सावित्रीबाई फुले ने कष्ट उठाकर मेहनत और धैर्य से इस काम को आगे बढ़ाया। गोविंदराव फुले ने पूना के रूढ़िवादी लोगों के डर और बहकावे में आकर अपने बेटे जोतिबा फुले को घर से निकाल दिया तो सावित्रीबाई भी सहर्ष उनके साथ गई।

जोतिबा फुले सावित्रीबाई का बहुत सम्मान करते थे और अपनी सफलता का श्रेय सावित्रीबाई को देते थे। 'अपने जीवन में जो कुछ भी कर सका, इसके लिए मेरी पत्नी कारणीभूत है' ऐसा कहते थे। सन् 1852 में अंग्रेज सरकार ने शिक्षा के प्रसार लिए फुले-दम्पति को सम्मानित किया था। उस अवसर पर गर्व के साथ जोतिबा ने सावित्रीबाई के कार्य का उल्लेख करते हुए कहा था:

" यह गौरव तुम्हारा ही गौरव है। मैं स्कूल खोलने के लिए कारण मात्र बन गया। लेकिन मुझे इस बात पर गुमान है कि उन स्कूलों को सुचारू रूप से चलाने में तुम सफल रही हो।" (एम.जी. माली; क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार)

सावित्रीबाई फुले भी जोतिबा को अपनी प्रेरणा मानती थी। जोतिबा फुले को केंद्रित करके कई कविताएं सावित्रीबाई ने लिखी हैं जिसमें अपनी भावना प्रकट की हैं।

भारतीय समाज में स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया। बचपन में पिता का, जवानी में पति का तथा बुढ़ापे में बेटे के संरक्षण में रहने को आदर्श स्थिति माना गया। लैंगिक भेदभाव व उससे उत्पन्न समस्त समस्याओं की जड़ यही है। फुले दम्पति ने इस तरह की भेदभावकारी व स्त्री विरोधी मान्यताओं को मानने से इनकार किया। उनका दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के प्रति आदर, विश्वास, सहयोग व समर्पण के साथ समतामूलक मूल्यों पर आधारित रहा।

जोतिबा फुले और सावित्रीबाई की सोच और स्वभाव एकमएक हो गए थे। उनका जीवन दाम्पत्य जीवन का आदर्श है। जोतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले के अनुयायियों व प्रशसंकों को इससे सीख लेने की आवश्यकता है कि पति-पत्नी के संबंधों में बराबरी सामाजिक संबंधों में भी बराबरी की बुनियाद है।

राजनीतिक गुलामी से अधिक अपमानजनक सामाजिक गुलामी

जोतिराव के समय में अंग्रेजों के खिलाफ कई विद्रोह भड़के थे। जोतिराव भी अंग्रेजों को बाहर खदेड़ने की योजनाएं बना रहे थे, लेकिन एक घटना ने उनके जीवन व विचारों की दिशा ही बदल गई।

बात सन् 1848 की है जोतिबा फुले अपने ब्राह्मण दोस्त सदाशिव गोवंडे के निमंत्रण पर उसकी बारात में जा रहे थे। जब बारातियों ने गैर-ब्राह्मण जोतिराव को देखा तो वे आग बबूला हो गए और जोतिराव का अपमान करके भगा दिया। जोतिराव वहां से आ तो गए लेकिन उनके जीवन की दिशा व ध्येय बदल चुका था। इस घटना ने उनके ज्ञान चक्षु खोल दिए।

जोतिबा को इस बात का अहसास हुआ कि जब तक भारतीय समाज में सामाजिक भेदभाव की परम्पराएं व विचारधारा मौजूद है, तब तक यहां कोई भी शासन करे उससे समाज के दलित-वंचित वर्गों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आने वाला।

जोतिबा फुले के विचार और आन्दोलन में तथा उच्च वर्ग के नेताओं-चिन्तकों के विचारों में यही बुनियादी अन्तर है। ब्राह्मणी सत्ता के मुकाबले में अंग्रेजी शासन को सामाजिक तौर पर उत्पीड़ित लोगों के लिए हितकर मानते थे। अंग्रेजी शासन के उच्चवर्गीय चरित्र के कारण उसकी आलोचना भी करते थे। वे बार-बार अंग्रेजी शासकों

को याद करवाते थे कि उनकी शासन नीति अन्ततः सामाजिक तौर पर उच्च वर्ग के लोगों के हक में ही है। शिक्षा पर किये जा रहे खर्च की बात हो, प्रशासन का पक्षपाती व्यवहार हो या फिर शासन में भागीदारी की बात हो। वे उद्घाटित करते हैं कि लोगों की गाढ़ी कमाई का धन अंग्रेज अफसरों की मिलीभगत से कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों की मौज-मस्ती पर खर्च हो रहा है।

इतने अनर्थ एक अविद्या ने किए

शिक्षा सांस्कृतिक प्रक्रिया है, समाजीकरण का माध्यम, शक्ति का स्रोत और शोषण से मुक्ति का मार्ग है। देश व समाज के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षा मनुष्य में छिपी हुई सभी संभावनाओं व क्षमताओं को विस्तार प्रदान करती है।

आधुनिक काल से पूर्व शिक्षा और ज्ञान उच्च वर्ग-वर्ण-जाति तक ही सीमित था, लेकिन आधुनिक काल में दलित-पिछड़ी जातियों में भी शिक्षा के प्रति लगाव हुआ और शहरों में इसके अवसर उपलब्ध हुए। भारतीय समाज में ज्ञान वर्चस्व बनाए रखने का साधन रहा है। इसीलिए समाज के उच्च वर्गों ने ज्ञान को अन्य वर्णों-वर्गों तक न पहुंचने देने के प्रावधान किए। मनुस्मृति में इसे बहुत बार दोहराया गया।

महाराष्ट्र में पेशवाई का अंत 1818 ई. में हुआ, शासन की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। शूद्र-अतिशूद्र, पिछड़ी जातियां, स्त्री वर्ग सामाजिक तौर पर गुलाम थी। सोच व व्यवहार में अंधविश्वास व अज्ञानता छाई हुई थी। शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखकर ही समाज का उच्च वर्ण उनमें दासता की स्वीकृति पनपाने में सक्षम हो सका है। अज्ञानता के कारण ही समाज का वंचित वर्ग उच्च वर्ग की कपोल-कल्पित धार्मिक कथाओं को अपने आचार-व्यवहार के आदर्श के तौर पर स्वीकार करके सांस्कृतिक उपनिवेश का शिकार रहा है। धर्मशास्त्रों की कथाओं और ब्राह्मणवादी व्यवस्था की शूद्र व स्त्री समाज में स्वीकृति को सामाजिक गुलामी का कारण माना।

सामाजिक गुलामी का सवाल जोतीराव को बचपन से ही बेचैन कर रहा था। वे इस सवाल के कारणों की तलाश कर रहे थे। उनको सामाजिक शोषण और उत्पीड़न का कारण अज्ञानता व अविद्या में दिखाई दिया। अज्ञानता के कारण बुद्धि का विकास नहीं हुआ। बुद्धि के अभाव में नीति-योजना का अभाव रहा, नीति के अभाव में तरक्की नहीं

हुई और तरक्की के बिना धन-संपति-संसाधनों का अभाव रहा और संसाधनों के अभाव में शूद्रों का विकास नहीं नहीं हुआ।

विद्या बिना मति गई।
मति बिना नीति गई।
नीति बिना गति गई।
गति बिना वित्त गया।
वित्त बिना शूद्र गए।
इतने अनर्थ, एक अविद्या ने किए।

सामाजिक भेदभाव, ऊंच-नीच और सामाजिक गुलामी को दूर करने में जोतिराव ने शिक्षा-प्रसार को समाज परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण ढंग स्वीकार किया। शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षित करने की मन में ठान ली। उन्होंने इस काम में अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले की सहायता ली।

अपनी पत्नी को इस कार्य में जोड़ने की प्रेरणा उन्हें अहमदनगर में शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही श्रीमती फॅरार से मिली। जोतिबा ने श्रीमती फॅरार का मिशन स्कूल देखा। श्रीमती फॅरार ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी पत्नी को शिक्षित करे तथा शिक्षित होने पर वह शिक्षा के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। जोतिराव को उनकी बात जंची और उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को शिक्षा दी।

शिक्षित होने के बाद सावित्री बाई ने शिक्षा प्रसार में योगदान दिया।

सन् 1848 में जोतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले ने पुणे के बुधवार पेठ में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। इसी स्कूल में सावित्रीबाई शिक्षिका हुई और पहली भारतीय महिला शिक्षक होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस स्कूल में कुल 6 लड़कियों ने प्रवेश लिया था। शास्त्रों की पिछड़ी सोच में जकड़े समाज में बालिकाओं को शिक्षा देना घोर पाप, शास्त्र-विरोधी माना जाता

था, इसलिए फुले को धर्मद्रोही और समाजद्रोही ठहराया गया। इस कार्य के लिए सामाजिक दबाव के चलते जोतिराव के पिता ने उनको अपने घर से निकाल दिया।

सावित्री-जोतिबा के स्कूल में महार, मांग जैसी अछूत जातियों की बालिकाओं को शिक्षा दी जाती थी। चूंकि स्त्री व शूद्र के प्रति ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण समस्त भारतीय समाज में घर कर चुका था, इसलिए सवर्णों के साथ साथ अछूतों ने भी उनका विरोध किया। आर्थिक तंगी के कारण यह पाठशाला बंद करनी पड़ी। लेकिन 1851 ई. में यह फिर शुरु की गई। जोतिबा और सावित्रीबाई ने पूना के आसपास कुल 18 स्कूल खोले।

सावित्री बाई व जोतिबा फुले द्वारा अछूत कन्याओं के लिए खोले गये पहले स्कूल का भवन - अहिल्याश्रम

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले के लड़कियों और अछूतों के लिए शिक्षा के काम का रूढ़िवादी समाज ने विरोध किया। सावित्रीबाई फुले जब स्कूल के लिए निकलती तो उन पर गोबर-पत्थर फेंकते। गोबर से सावित्री बाई फुले की साड़ी गंदी हो जाती थी। इस कारण वह एक अतिरिक्त साड़ी अपने साथ लेकर जाती थी। स्कूल में जाकर साड़ी बदल लेती थीं। गोबर-पत्थर फेंकने वालों की इन हरकतों से वह निराश नहीं हुई। उनसे वह कहती

'मेरे भाइयो, मुझे प्रोत्साहन देने के लिए, आप मुझपर पत्थर नहीं, फूलों की वर्षा कर रहे हैं, तुम्हारी इस करतूत से मुझे यही सबक मिलता है कि मैं निरंतर अपनी बहनों की सेवा में लगी रहूं। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे।'

एक बार तो बात काफी आगे बढ़ गई। एक लंबे-तगड़े व्यक्ति ने सावित्रीबाई का रास्ता रोक लिया। भला-बुरा कहने लगा। सावित्रीबाई ने रास्ता छोड़ने को कहा लेकिन वह सावित्री के रास्ते से नहीं हटा। सावित्रीबाई ने निडरता से उसे थप्पड़ रसीद कर दिया तो वह भाग खड़ा हुआ।

सावित्रीबाई में शिक्षा के प्रति इतनी लगन पैदा हो गई थी कि अपनी जान और समाज की निंदा-भर्त्सना को सहन करके भी इस काम में लगी थी। सावित्रीबाई का मानना था कि जब तक सामाजिक जीवन में अज्ञानता है तब तक सुधार और तरक्की संभव नहीं

है। अज्ञानता को वह मानवता का सबसे घातक दुश्मन समझती थी और इसे अपने जीवन से ढूंढ-ढूंढकर और पीटकर भगाने का आह्वान करती किया।

अज्ञान
सबसे बड़ा शत्रु हमारा
उसे खोजो, दबोचो, पीटो
और अपने बीच से भगा दो (अज्ञान)

अंग्रेजी शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों ने स्कूल खोले। जिनमें सभी समुदायों के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। संस्कृत पाठशालाओं में उच्च वर्ण-वर्ग के बच्चे ही शिक्षा प्राप्त करते थे। अछूत समुदाय में न तो शिक्षा की इच्छा थी और न ही उनके लिए कोई स्कूल था। सामाजिक भेदभाव के कारण अछूतों के बच्चे सवर्णों के साथ शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। जोतिबा ने बार-बार रेखांकित किया कि उच्च वर्ग के शिक्षक निम्न वर्ग की शिक्षा के प्रति गंभीर नहीं हैं, बल्कि उनका रुख भेदभाव व शत्रुतापूर्ण है।

जोतिराव व सावित्रीबाई शिक्षा कार्य में उल्लेखनीय सफलता हासिल हुई। जोतिराव की पाठशाला की बालिकाओं की सार्वजनिक तौर पर परीक्षा ली गई, जिसमें उन्होंने प्रशंसा प्राप्त की। जोतिबा की लगन व प्रतिबद्धता से प्रभावित होकर समाज के प्रतिष्ठित लोग पाठशालाओं में आते और आर्थिक मदद करते थे।

शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों की सृजनशीलता का विकास ही फुले दम्पति का मकसद था। इस मकसद में उनकी सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि स्कूल की एक लड़की पुरस्कार प्राप्त करने गई तो उसने समारोह के मुख्य अतिथि से कहा कि

'पुरस्कार के रूप में हमें खिलौने नहीं चाहिए, हम अपने स्कूल में एक पुस्तकालय चाहते हैं।'

इसका एक उदाहरण और भी दिया जा सकता है। सावित्रीबाई की 14 वर्षीय मातंग (अछूत) छात्रा मुक्ता साल्वे ने सन् 1855 में एक आत्मकथात्मक निबंध लिखा। जो उस समय बहुत चर्चित हुआ था। अखबारों और बॉम्बे प्रेसीडेंसी एजुकेशन रिपोर्ट में भी प्रकाशित हुआ था। वह लिखती हैः

> "ये लड्डूखाऊ (लड्डू खाने वाले) ब्राह्मण कहते हैं कि वेदों पर सिर्फ उनका एकाधिकार है। गैर-ब्राह्मणों को वेदों को पढने का अधिकार नही है। क्या इससे यह साबित नही होता कि हमारा कोई धर्म नहीं है क्योंकि हमें धर्म ग्रंथों में झांकने तक का अधिकार नहीं है? हे भगवान, कृपा करके हमें बताओ हम किस धर्म का पालन करें।"

सावित्रीबाई फुले आणि फातिमा शेख यांच्या
शाळेतील दोन विद्यार्थिनींसह

सावित्रीबाई फुले की सहयोगी फातिमा शेख

फुले दम्पति के इस क्रांतिकारी कार्य में एक मुस्लिम स्त्री फातिमा शेख ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। फुले दम्पति ने जो 'नार्मल स्कूल' स्थापित किया था, उसमें फातिमा शेख ने अध्यापन प्रशिक्षण पूर्ण किया था। फातिमा जोतीराव फुले के मित्र उस्मान शेख की बहन थी। जोतीराव के पिता द्वारा उन्हें घर से निकाल देने के बाद, उस्मान शेख ने ही अपने घर में उन्हें आश्रय दिया था। सावित्रीबाई और फातिमा मिलकर अछूत बच्चों के स्कूल का संचालन करती थीं। सावित्री बाई फुले ने अक्तूबर 1868 में जोतिबा को लिखे पत्र में इसका जिक्र करते हुए लिखा है:'मैं जानती हूँ कि मेरे न होने से फ़ातिमा को कितनी मुश्किल हुई होगी लेकिन मुझे यकीन है वह समझेगी और कुर-कुर नहीं करेगी।'

संस्कृत देवताओं ने बनाई, मराठी क्या चोर उच्चकों से आई?

जोतिबा फुले जनभाषा के समर्थक थे। भाषा का सवाल असल में सत्ता संघर्ष से जुड़ा हुआ है। लोकभाषा के लिए उन्होंने संघर्ष किया। पेशवा शासन के समय से ब्राह्मणों को पुरस्कार देने के लिए संस्कृत ग्रंथों को अनुदान दिया जाता था। इसकी राशि काफी थी।

पेशवाओं के शासन के बाद अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ, लेकिन यह परंपरा जारी रही। यद्यपि इसकी राशि घटा दी गई थी।

दक्षिणा प्राइज कमेटी बनी, लेकिन इसमें मराठी भाषा की पुस्तकों को इसमें शामिल नहीं किया जाता था। मराठी भाषा की पुस्तकों को पुरस्कार देने के लिए कुछ सुधारवादी ब्राह्मण लेखकों ने अंग्रेज अधिकारियों को पत्र लिखा। सनातनी ब्राह्मणों को इसका पता चला तो इसका विरोध किया और दक्षिणा का संबंध धर्म से जोड़ते हुए कहा कि सरकार को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन्होंने उन लोगों को दंडित करने का निर्णय लिया, जिन्होंने पत्र लिखा था। उनको सार्वजनिक तौर पर तिरस्कृत करने के लिए पंचायत बुलाई।

पत्र लिखने वाले सुधारवादियों ने जोतिबा फुले से मदद मांगते हुए आशंका जताई कि पंचायत में उनके साथ मार-पीट भी हो सकती है। जोतिबा फुले ने सहर्ष मदद सहमति दी। सैंकड़ों की संख्या में शूद्रों-अतिशूद्रों के जुलूस में सुधारवादी पंचायत में पहुंचे। पंचायत में सनातनी ब्राह्मणों ने पूछा कि पत्र किसने लिखा है तो उन्होंने जोतिबा फुले का नाम लिया। फुले का नाम ही काफी था कि सारा मामला ही निपट गया।

मध्यकालीन संतों कबीर-रैदास आदि ने भी भाषा के सवाल को उठाया था। मराठी के संत ने कहा था कि संस्कृत भाषा देवताओं ने बनाई, मराठी क्या चोर उच्चकों से आई?

एक हजार रुपए की सुपारी

जोतिराव धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, पाखंडों के खिलाफ लोगों को जागृत करते थे। तत्कालीन कट्टरपंथी समाज ने इसे अपनी रोजी-रोटी पर हमले के तौर पर लिया और जोतिराव की हत्या करवाने की योजना बनाई। घोंडीराव और रोद्रे नामक व्यक्तियों को जोतिराव को मारने के लिए तैयार किया गया।

एक दिन आधी रात को ये दोनों जोतिबा के घर में घुसे। आहट पाकर जोतिबा और सावित्री जागे। देखा तो हाथों में चमचमाते छुरे लिए दो हट्टे-कट्टे आदमी खड़े थे।

क्या चाहते हो? जोतिबा ने पूछा।

तुम्हारी जान।

क्यों? क्या मैंने आपका कुछ अहित किया है?

वह बात नहीं है। हमें बस तुम्हें जान से मारने का हुक्म है।

मुझे मारकर तुम्हें क्या मिलेगा?

एक-एक हजार रुपये।

अरे, तब तो जरूर मेरा सिर कलम कर दो। अगर इससे तुम्हारा कुछ भी भला होता है, तो मैं रोड़ा क्यों अटकाऊं। जिस गरीब जनता की सेवा में मैंने अपना पूरा जीवन लगा

दिया, वही जनता अगर मेरा गला काटना चाहती है, तो ठाकुर की मर्जी, भले काटे। मेरी सारी हयात अछूतों का भला करने में गई है। अब अगर मेरी मौत से उनका भला होता है, तो मैं क्यों रोकूं। बढ़ो आगे।

जोतिबा की धीर गम्भीर, आत्मविश्वासपूर्ण वाणी सुनकर दोनों ने हथियार डाल दिए। जोतिबा के पैर पकडक़र उन्होंने क्षमा मांगी। जोतिबा ने उदारतापूर्वक उनको क्षमा कर दिया। उनमें से एक कुछ दिनों बाद जोतिबा का शरीर संरक्षक बना और दूसरा घोंडीराव सत्यशोधक समाज का प्रबल समर्थक सिद्ध हुआ। (मु.ब. शहा, -पृ.29)

अपना बच्चा साथ ले जाएं या यहीं रखें, आपकी मर्जी

सन् 1863 में जोतिबा फुले ने 'शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह' शुरू करके क्रांतिकारी कदम उठाया। हालांकि उस समय उनकी आय बहुत सीमित थी, लेकिन उन्होंने अपने मकान 395, गंजपेठ, पूना में विधवाओं के लिए यह प्रसुति-गृह खोला। उस जमाने में बाल-विवाह होते थे और अनेक कारणों से पति की मृत्यु के कारण बाल-विधवाओं की संख्या काफी थी। इन विधवाओं के यौन-शोषण के कारण ये गर्भवती हो जाती गर्भ को गिराने के प्रयास किए जाते थे, जिससे महिलाओं का स्वास्थ्य खराब होता था। कई मामलों में महिलाएं आत्महत्या कर लेती थी। कई मामलों में नवजात शिशु की हत्या की जाती थी। कई मामलों में महिलाओं की हत्या कर दी जाती थी और कई मामलों में उन्हें घर से बाहर खदेड़ दिया जाता था।

विशेषतौर पर गौर करने की बात यह है कि इसमें अधिकांश महिलाएं उच्च जाति से ताल्लुक रखती थी, क्योंकि शास्त्रीय परंपराओं व मान्यताओं को वही समाज अधिक मानता था। निम्न अथवा मध्यम जातियों पर शास्त्रीय परंपराओं की जकड़ अधिक नहीं होने के कारण विधवाओं का विवाह कर दिया जाता था।

सावित्रीबाई व जोतिराव फुले ने अपने घर में विधवाओं के लिए प्रसुति-गृह खोला। इसकी सूचना के लिए पूना में जगह-जगह पोस्टर लगाए गए। इन पोस्टरों पर लिखा थाः

'विधवाओं! यहां अनाम रहकर बिना किसी बाधा के अपना बच्चा पैदा कीजिए। अपना बच्चा साथ ले जाएं या यहीं रखें, यह आपकी मर्जी पर निर्भर रहेगा।'

यह समस्या कितनी भयंकर थी इसका अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि यहां 35 बच्चे पैदा हुए थे, जिनमें से केवल 5 बच्चे जिंदा बचे थे। क्योंकि गर्भ गिराने के प्रयास में उनको पहले ही चोट पहुंचाई जा चुकी थी। बाल-विवाह के खिलाफ तथा विधवा-पुनर्विवाह पर पत्र लिखते हुए जोतिबा फुले ने जिक्र किया कि

"रावसाहब सदाशिव बल्लाळ गोवंडे मेरे एक ब्राह्मण मित्र हैं, जो इनाम कमीशन में अफसर हैं। उनके घर में काशीबाई नाम की ब्राह्मण विधवा को रसोई के काम पर रखा गया। बेचारी काशीबाई एक सम्भ्रान्त परिवार की सज्जन, सुंदर युवती थी, चरित्रवान थी। कई महीनों तक उसने उस घर में काम किया, लेकिन उनके पड़ोस में एक चालाक ब्राह्मण शास्त्रीबुवा रहता था, जिसने उस निरीह औरत को बहकाने की बहुत कोशिश की। काशीबाई ने पहले उसका प्रतिरोध किया, लेकिन बाद में वह उसकी वासना का शिकार बन गई और तुरंत गर्भवती हो गई। अपने जार के कहने पर गर्भपात कराने हेतु उसने कई विषैली दवाइयां खाई, लेकिन वे सारी कोशिशें असफल रहीं। नौ महीनों बाद काशीबाई ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया, लेकिन बदनामी के डर से उसने छुरे से उस अर्भक की हत्या कर उसे अपने मालिक के घर के पिछवाड़े के कुएँ में फेंक दिया। दो दिन बाद पुलिस ने उसपर शक कर उसे गिरफ्तार किया। पुणे के सेशन कोर्ट में उसपर मुकदमा चला तथा उसे आजन्म कारावास की सज़ा मिली। अपना नाम ब्राह्मण जाति में कलंकित न हो, इसी हेतु से काशीबाई ने यह अपराध किया। इस केस से आर्य व्यवस्था का अन्यायी तथा पक्षपाती चरित्र लोगों के सामने उजागर हुआ और वे भय के मारे सहम गये। हालाँकि मेरी अपनी आमदनी मेरे खर्च पूरा करने में भी अपर्याप्त थी, मैं काशीबाई के मुकदमे के बाद अपने घर के अहाते में ब्राह्मणों के लिए एक अनाथ बालकगृह बनाने के लिए बाध्य हो गया। साथ में जोड़ी गई सूचना की प्रतियाँ मैंने ब्राह्मणबस्ती की सड़कों के कोने पर चिपकाई। तब से लेकर अब तक कुल पैंतीस औरतें इस गृह में आईं तथा अपने अर्भक छोड़ गई, उनमें से पाँच बालक जीवित हैं, शेष उनकी माता द्वारा गर्भपात कराने के लिए दी गई विषैली जड़ी-बूटियों की कारण मर गये। इस भयानक व्यवस्था के कारण प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की कितनी सारी सुंदर विधवाएँ खुलकर या छिपकर वेश्यावृत्ति अपनाने पर मजबूर हो जाती हैं। ब्राह्मण

विधवाओं को अपनी ज़िंदगी इतनी दुखभरी तथा लज्जास्पद दिशा में ढकलने पर जो विवश करती है, वह आर्य व्यवस्था कितनी भ्रष्ट तथा घृणास्पद है।" (महात्मा फुलेः साहित्य और विचार, पृ.-305)

सावित्रीबाई इस काम में जोतिबा फुले के साथ थी। वे प्रसुति गृह की महिलाओं की जचगी, दवा, खाने-पीने की व्यवस्था संभालती थी, वे विधवाओं की संतानों को मां का प्यार प्रदान करती थी। इस बात का जिक्र सावित्रीबाई फुले ने 'बावनकशी' कविता में किया है। सन् 1873 में काशीबाई नामक विधवा ने एक लड़के को जन्म दिया। फुले दम्पति ने इस बच्चे को गोद ले लिया इसका नाम यशवंत रखा।

अछूतों को पानी का अधिकार

अछूतों की हालत बहुत दयनीय थी। पीने का पानी तक दो मील दूर से लेकर आना पड़ता था। सन् 1868 में जोतिराव ने अपने घर के पास पीने के पानी का एक हौज अछूतों के लिए खोल दिया। उनके इस कार्य का बहुत विरोध हुआ उनके विरुद्ध दुष्प्रचार किया कि वे ईसाई हो गए हैं, लेकिन जोतिराव ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने कार्य में लगे रहे।

अछूतों के प्रति जोतिबा का विशेष प्रेम था। वे उनकी गरीबी और सामाजिक स्थिति में एक संबंध देखते थे। - वे अक्सर अछूतों की बस्ती में चक्कर लगाया करते। वहां बच्चों के माता-पिता के काम पर चले जाने पर

बच्चे गंदे ही घूमते-फिरते थे। उनके चेहरे गंदे-घिनौने चेहरे, उनकी बहती नाक देखकर वे रुकते, उनके चेहरों को अपने हाथों से साफ कर उनको प्यार करते, उन्हें दुलारते, पुचकारते। कई बार तो वे उनके लिए खाने की वस्तुएं खरीद लाते। उन मैले-कुचैले बहती नाक वाले गंदे बच्चों को अपने पास बिठाकर वे उनका मुंह मीठा कराते। जोतिराव के परिचित उन्हें इन बातों के लिए उलाहना देते, ताने कसते। इस बारे में उनसे पूछते तो वे यही जवाब देते कि यह सब गरीबी की लाचारी है। ये गंदे कपड़े, यह घिनौनी जिंदगी उसी का असर है। यदि अपना मन चंगा हो , दिल साफ हो, मन का मैल धो लिया जाए तभी तो हृदय में सहानुभूति पैदा होगी, उसमें करुणा जागेगी और गरीबों की दुनिया में रहने की लगन उपजेगी। (जोति चरित – लक्ष्मणतीर्थ शास्त्री, ने.बु.ट पृ.-79.)

स्वतंत्रता-समता-बंधुता आधारित सत्यशोधक समाज

25 वर्ष तक सामाजिक जीवन में समाज-सुधार के अनेक कार्य करने के बाद जोतिबा फुले ने 24 सितम्बर, 1873 को पूना के जूनागंज के घर नंबर 527 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इसमें 60 के करीब लोग शामिल थे। सत्यशोधक समाज ही एकमात्र ऐसा समाज था जो वर्ण-मुक्त, जाति-मुक्त, लैंगिक शोषण-मुक्त, वैज्ञानिक चेतना संपन्न वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए कार्यरत था। जोतिबा फुले के नेतृत्व में सत्यशोधक समाज से जुड़े लोगों ने सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक, और आर्थिक शोषण के खिलाफ अनेक पहलकदमियां की।

सत्यशोधक समाज के काम की तीन दिशाएं थी।

(क) व्यक्ति और निर्मिक के मध्य किसी बिचौलिये की जरूरत नहीं। बिचौलियों द्वारा लादी गई धार्मिक गुलामी को नष्ट करना, अंधश्रद्धा अज्ञानी लोगों को उस गुलामी से मुक्त करना।

(ख) साहूकारों और जमींदारों के शिकंजे से किसानों को मुक्त करना।

(ग) सभी जातियों के स्त्री-पुरुषों को शिक्षा प्राप्त करा देना।

सत्यशोधक समाज का काम महाराष्ट्र के गांव-गांव में पहुंचा था। समाज पर व्यापक प्रभाव भी पड़ा। जोतीराव का मानना था कि मेहनतकश जनता का अधिकांश धन दान पुण्य में चला जाता है। यदि इस धन को वह अपना जीवन स्तर सुधारने पर लगाता तो वह अच्छा जीवन जी सकता। इस धन से अपने परिवार की बेहतरी के बहुत से काम कर सकता। ब्राह्मण पुरोहित अनिष्ट का भय दर्शाकर आम लोगों का ठगा करते हैं। इस बात

को समझाने के लिए उन्होंने तृतीय नाटक, ब्राह्मणों की चालाकी, किसान का कोड़ा तथा गुलामगिरी पुस्तक में विस्तार से लिखा।

सत्यशोधक समाज का पहला कार्यक्रम पुरोहित को बुलाए बिना विवाह, गृह-प्रवेश, भूमि-पूजन आदि संपन्न करवाना था। जोतिराव को इसमें सफलता मिली, बालाजी कुसाजी पाटिल ने अपने बेटे का विवाह बिना पुरोहित को बुलाये सत्यशोधक समाज के नियमों के अनुसार संपन्न करवा दिया। पुरोहितों ने इसका कड़ा विरोध किया। पूना जिले के ओतूर गांव में ब्राह्मणों की सभा हुई, जिसमें आसपास पुरोहितों ने भाग लिया और बिना पुरोहित के विवाह संपन्न करने को अपने अधिकारों पर कुठाराघात माना और इस विवाह के विरुद्ध मुकदमा कर दिया।

वहां के जिला न्यायधीश ने अपने निर्णय में कहा कि, ब्राह्मण पुरोहित की अनुपस्थिति में विवाह संपन्न करना, विशेषकर ग्राम पुरोहित के बिना की गई शादी अनुचित है। ग्राम पुरोहित को निमंत्रित करना अथवा न करना भले ही यजमान की इच्छा पर छोड़ दिया जाए फिर भी विवाह संपन्न कराने की दक्षिणा-भेंट उसे अवश्य पहुंचाई जानी चाहिए। जोतीराव ने इस निर्णय को उच्च न्यायालय में चुनौती दी और उनके अकाट्य तर्कों के कारण उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय को खारिज कर दिया।

शोषण से मुक्ति के लिए उन्होंने ब्राह्मणी कर्मकाण्डों का विकल्प तैयार किया, जिसमें न तो कर्मकाण्डों की प्रधानता थी और न ही दक्षिणा की आवश्यकता थी। जीवन के विभिन्न अवसरों पर पुरोहित की उपस्थिति पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए अपने समुदाय और भाईचारे को प्राथमिकता दी। वे कहते थे समाज के लोग एकत्रित होकर ऐसा करें।

जोतिबा की मृत्यु के बाद सावित्रीबाई फुले ने सत्यशोधक आंदोलन को आगे बढ़ाया। 1893 में सत्यशोधक समाज के सम्मेलन में वे सत्यशोधक समाज की अध्यक्ष बनीं। महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों-किसानों में सत्यशोधक समाज का गहरा प्रभाव पड़ा।

नारी किसी धर्म-ग्रंथ की रचना करती तो...

भारतीय समाज में मनुवादी विचारधारा के वर्चस्व के कारण स्त्री का स्थान दोयम दर्जे का ही रहा। जोतिबा ने स्त्री को बराबरी का दर्जा देने की वकालत की। जोतिबा ने स्त्री और पुरुष के बीच मौजूद खाई को पाटने की कोशिश की तथा इसके कारणों को तलाश करते हुए पाया कि धर्म का आधार लेकर स्त्री और पुरुष में भेदभाव को वैधता दी गई है।

धर्म-ग्रंथों का लेखन पुरुषों द्वारा किया गया है इसीलिए धर्मों में स्त्री के प्रति दोयम दर्जे को रखा है। इस संबंध में उन्होंने लिखा कि —

किसी नारी ने आज तक यदि किसी धर्म किताब की रचना की होती तो पुरुषों द्वारा सभी नारियों के अधिकारों के बारे में आपत्ति करके अपने पुरुष जाति के अधिकारों के बारे में वे बकवास न करते। क्योंकि नारियां यदि ग्रंथ लिखने योग्य होतीं तो पुरुषों ने इस तरह से उनका शोषण करके भेदभाव किया ही नहीं होता। (जोतिबा फुले रचनावली, रचनावली भाग 2, पृ.- 174)

जोतिबा फुले ने नारी को न केवल पुरुष के बराबर माना, बल्कि श्रेष्ठ माना। इस संबंध में बलवंतराव से हुई उनकी बातचीत पर गौर करना आवश्यक है:-

बलवंतराव : इन दो नर-नारियों में सबसे ज्यादा श्रेष्ठ कौन है?

जोतीराव : इन दोनों में सबसे ज्यादा श्रेष्ठ नारी है।

बलवंतराव : इन दोनों में सबसे ज्यादा श्रेष्ठ नारी ही क्यो है?

जोतीराव : इसका कारण है। निर्माता द्वारा निर्मित अनोखा मोह उत्पन्न वाले इस भवसागर में तैरकर मजा लेने वाले क्षणिक नर और नारी मानव प्राणी हैं। उनमें भी स्वभाव से नारी जाति लज्जालु है। इसलिए नारी सबसे पहले एक नर को मेलजोल करने के लिए पहल करने का अवसर देती है और उस मेलजोल को संभोग की इच्छा रखने वाला यह धूर्त नर इतना बढ़ाता है कि अंत में नारी स्वयं ही उसको अपना मददगार, राहगीर, साथी बनाती है। और वही नारी प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने ही बच्चों का भी नहीं, बल्कि ब्राह्मणों के धोखेबाज ब्रह्मचारी शंकराचार्य जैसे बच्चों का भी बिना शिकायत के चुपचाप नौ माह तक रात और दिन लगातार अपने पेट में बोझ ढ़ोती रहती है। वही हम सभी को जन्म देने वाली है। वही हमारा मल-मूत्र साफ करके हम सभी को पाल-पोसकर हमारी देखभाल करने वाली है। जब हम सभी दुर्बल होते हैं, अबोध होते हैं उस समय वही हमारी चिंता करती है और उसी ने हम सभी को बोलने के लिए तथा चलने के लिए सिखाया है। इसी की वजह से सभी की जुबान पर एक विश्व प्रसिद्ध कहावत है कि सभी के उपकारों से मुक्त हो सकते हैं, लेकिन अपने को जन्म देने वाली मां के उपकारों से मुक्त होना असंभव है इसीलिए मैं यह कह सकता हूं कि नर से नारी श्रेष्ठ है। ...

बलवंतराव : पुरुषों में अन्याय करने की प्रवृत्ति कैसे पैदा होती है?

जोतीराव : नारी जाति बड़ी अबला होती है, इसलिए इन स्वार्थी और साहसी पुरुषों ने बड़ी चालाकी से यह तय-सा कर दिया कि किसी भी काम में नारी जाति की स्वीकृति लेना जरूरी नहीं है। उन्होंने हर क्षेत्र में अपने ही वर्चस्व को बढ़ाया। नारी को अपने मानवी हक समझ में न आएं, इसलिए उन्होंने नारी को पढ़ाने-लिखाने से वंचित कर दिया। सभी नारियों पर इस तरह की स्थिति आई है। (जोतिबा फुले रचनावली,भाग 2, पृ.-108)

विधवाओं की हालत दयनीय थी। किसी भी उत्सव में उसे शरीक नहीं होने दिया जाता था। केश काटकर तिरस्कारपूर्ण व अपमानजनक अवस्था में रहने के लिए मजबूर किया जाता था। जोतीराव ने इसके खिलाफ आवाज उठाई और विधवा-केशमुंडन की प्रथा बंद करवाई।

बम्बई में नाइयों की सभा की, जिसमें 400-500 नाई उपस्थित हुए। इस सभा में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया कि कोई भी नाई आज के बाद विधवा का केशवपन नहीं करेगा। उनकी प्रेरणा से नाईयों ने केश मुंडन करने से इन्कार कर दिया। इससे प्रेरित होकर अन्य शहरों के नाइयों ने भी विधवा मुंडन बंद कर दिया था। इस किस्म का कदम अपने ही तरह का अनूठा प्रयास था।

इस संबंध में जोतिबा फुले ने सरकार से विधवाओं के मुंडन पर कानून बनाने की मांग करते हुए लिखा कि “मैं प्रस्ताव रखता हूँ कि अभागी ब्राह्मण विधवाओं का मुंडन करने पर नाइयों पर प्रतिबंध लगाया जाए जो पक्षपातपूर्ण आर्य व्यवस्था विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं देती, वह विधुरों पर वह नियम क्यों नहीं लागू करती? यह बात तो साफ है कि अगर विधुरों को यह अनुमति दी जाती है, तो गरीब विधवाओं को भी आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह की अनुमति मिलनी ही चाहिए। इसमें कोई आशंका नहीं है कि स्वार्थी तथा दुष्ट विधिवेत्ताओं ने औरत जाति के खिलाफ द्वेष भावना के कारण ही अपने शास्त्रों में ऐसे अन्यायपूर्ण तथा अटपटे प्रावधान किये हैं।”

जोतिबा स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों के समर्थक थे। उन्होंने स्त्री और पुरुष में भेद करने की आलोचना की। उन्होंने कहा कि “नारी और पुरुष दोनों समान रूप से सभी मानवीय अधिकारों का उपभोग करने के लिए हकदार हैं फिर नारियों को एक अलग

प्रकार का नियम और लोभी, अंहकारी पुरुषों के लिए दूसरे प्रकार का नियम व्यवहार में लाना पक्षपात के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसे कुछ अंहकारी पुरुषों ने अपनी जाति के स्वार्थ के लिए नकली, स्वार्थ-प्रेरित धर्म किताबों में नारियों के बारे में इस तरह के स्वार्थी लेख लिखे हैं।" (जोतिबा फुले,रचनावली भाग-2, पृ.-111)

स्वामी दयानन्द की शोभा-यात्रा

जोतिराव धार्मिक तौर पर खुले विचारों के व्यक्ति थे। विचार-स्वतन्त्रता के कितने हिमायती थे, इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है। सन् 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती पूना पहुंचे, उन्होंने वहां कई व्याख्यान दिए। आयोजकों ने 5 सितंबर 1975 को स्वामी दयानंद की शोभा-यात्रा निकालने की योजना बनाई, लेकिन पूना के कट्टरपंथी पुराणपंथियों ने दयानंद की शोभा-यात्रा न निकालने देने की धमकी दी। शोभा-यात्रा के आयोजकों ने जोतिबा फुले से मदद मांगी। यद्यपि जोतिबा फुले स्वामी दयानन्द के विचारों से पूर्णत: सहमत नहीं थे, क्योंकि स्वामी दयानंद तो वेद समर्थक व प्रचाक थे, जबकि जोतिबा फुले की वेदों में आस्था व मान्यता नहीं थी। परंतु उनका मानना था कि सबको अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है इसलिए उन्होंने स्वामी दयानन्द की शोभायात्रा में मदद की। जोतिराव के होते हुए पोंगापंथियों की शोभायात्रा को रोकने की हिम्मत नहीं हुई, लेकिन उन्होंने स्वामी दयानन्द को लांछित करने के लिए दूसरा तरीका अपनाया। एक गधे को सजाकर उन्होंने बाजे-गाजों के साथ शोभायात्रा निकाली।

हल चलाने वाले किसान खेतों के मालिक हों

साहूकार और जमींदारों के शोषण से किसानों की हालत दयनीय हो गई थी। प्राकृतिक विपदाएं अकाल आदि से किसानों का जीवन दूभर था। किसान इससे छूटकारा पाने के लिए आन्दोलन भी करते थे। उस दौरान कई आन्दोलन हुए। साहूकार किसानों को कर्ज देते समय कम रकम देकर कागजों पर अधिक लिखवा लेते थे। अकाल आदि के चलते किसान समय पर कर्ज अदा नहीं कर पाते थे और साहूकार उनकी जमीनों को हड़प लेते थे।

महाराष्ट्र के जून्नर क्षेत्र के किसानों साहूकारों-जमींदारों के शोषण से बेहद दुखी थे। उन्होंने सरकार को इनसे बचाने की गुहार लगाई। इस क्षेत्र में अधिकांश साहूकार-जमींदार

ब्राह्मण थे। जुन्नार के किसानों ने साहूकारों और जमीदारों के अत्याचार व शोषण से बचाने के लिए सरकार को पत्र लिखा। सरकार ने इस अर्जी पर ध्यान नहीं दिया तो जोतिबा के नेतृत्व में किसानों ने संगठित होकर सालभर जमीन पर कोई फसल नहीं बोई। खेत बंजर और सूखे पड़े रहे। जोतिबा कहते थे -'जब तक हल चलाने वाले किसानों को खेतों का स्वामी नहीं बनाया जाता, तब तक भारत जैसे कृषि प्रधान देश की उन्नति नहीं होगी और न ही पैदावार बढ़ेगी।' सरकार को एक 'एग्रीकल्चर एक्ट' पास करना पड़ा। किसानों को शोषण से मुक्ति मिली।

जनतांत्रिक परिवार में कौन सा धर्म हो

गणपतराव : तो फिर सारी दुनिया के नारी-पुरुषों को किस धर्म को स्वीकार करना चाहिए, इसके बारे में आप निर्णय करेंगे, तो बहुत ही अच्छा होगा।

जोतीराव : अरे बाबा, इस धरती पर महासत्पुरुपुषों ने जितनी धर्म किताबें लिखी हैं उन सभी में उस काल के अनुरूप उनकी समझ के अनुसार कुछ-न-कुछ सत्य है, इसलिए किसी परिवार की एक नारी बौद्ध धर्म की किताब पढ़कर अपनी इच्छानुसार यदि वह उस धर्म को स्वीकार करना चाहती है तो कर सकती है। और उसी परिवार का उसका पति बाइबिल का नया या पुराना करार (New and old testament) पढ़कर अपनी इच्छा के अनुसार चाहे तो ईसाई धर्म को स्वीकार कर सकता है, और उसी परिवार में उसकी लड़की को कुरान पढ़कर उसकी मर्जी का इस्लाम धर्म की तरफ हो गई तो उसको इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसी परिवार के उसके लड़के को सार्वजनिक सत्य धर्म किताब पढ़कर उसकी इच्छा यदि सार्वजनिक सत्यधर्म में हो गई तों उसको सार्वजनिक सत्यधर्मी होना चाहिए। और इन सभी माता-पिताओं तथा बाल-बच्चों को अपना पारिवारिक जीवन व्यतीत करते समय किसी को भी किसी कें धर्म से नफरत या घृणा नहीं करनी चाहिए। वे सभी हम सभी के निर्माता द्वारा निर्मित संतान हैं और हम सभी उसी के परिवार के लोग हैं, ऐसा समझकर हम सभी को एक-दूसरे के साथ प्यार और मोहब्बत से एक-दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिए। मतलब, वे हम सभी के निर्माणकर्ता के राज में धन्य होंगे।

अब उनकी हड्डियों का ढांचा मात्र बचा है

भारत में बार बार अकाल पड़ता था और इसमें सबसे अधिक गरीब किसान सबसे अधिक शिकार होते थे। गांव छोड़कर उन्हें ही जाना पड़ता था। सन् 1877 में महाराष्ट्र में भंयकर अकाल पड़ा। लोग भूखे मर रहे थे। चारे के अभाव में गांव-देहात के लोग अपने

अकाल पीड़ितों की राहत के लिए सावित्री बाई फुले द्वारा संचालित भोजनालय का दुर्लभ चित्र।

पशुओं को भगा रहे थे। अपने घरों को छोड़कर शहर में आ रहे थे। अकाल-पीड़ितों के प्रति संवेदना मात्र प्रकट करने से ही जोतीबा का काम नहीं चलता था, बल्कि उन्होंने अपने समाज के सदस्यों से मदद करने की अपील भी की। उन्होंने 17 मई, 1877 को इस संबंध में पत्र लिखा:

पूना, मुंबई आदि शहरों के मेहरबान सदस्यों से विनम्र विनती।

समाज के आदेश के अनुसार आप लोगों को विनम्रतापूर्वक यह सूचित किया जा रहा है कि समाज के द्वारा 'व्हिक्टोरिया बालाश्रम' की स्थापना की गई है। अकालग्रस्त लोग अपने बाल बच्चों को घरों पर ही छोड़कर जाने लगे हैं और उसी के परिणामस्वरूप उंदापुर, मिरज और तास गाँव की ओर से ब्राह्मणों के अलावा बाकी सभी जातियों के बेसहारा लोग अपने बाल-बच्चों समेत एकत्रित हुए हैं। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन दिन तक भूखा रहना पड़ता है। इस कारण अब उनकी हड्डियों का ढांचा मात्र बचा है। इसके अलावा कपड़े-लत्तों के बिना वे इतने बदहाल हैं कि उनका वर्णन करने में भी मुझे बहुत पीड़ा होती है। इसलिए अपने सभी सदस्यों और अन्य सभी संवेदनशील लोगों से निवेदन

है कि अपनी शक्ति के अनुसार कुछ-न-कुछ मदद जल्दी पहुंचायेंगे तो इस समय में अपना फर्ज अदा करने का श्रेय प्राप्त होगा।

तारीख 17 मई, सन् 1877 ई०

आपका सेवक,
जोतीराव गोविंदराव फुले, सत्यशोधक समाज, सचिव

सत्यशोधक समाज ने 'विक्टोरिया बाल आश्रम' की स्थापना की जिसमें हजारों लोग हर रोज खाना खाते थे। उनके प्रति वे कितने संवदेनशील थे इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वंचित लोगों का पक्ष रखने के लिए वे कार्यकर्त्ता तैयार करना चाहते थे और इसके लिए उनको भाषण देना व निबन्ध आदि लिखना आए इसे निहायत आवश्यक समझते थे। इसीलिए उन्होंने सत्य शोधक समाज की ओर से भाषण व निबन्ध प्रतियोगिताएं आयोजित करने के कार्यक्रम बनाए। इन प्रतियोगिताओं में गरीबों की स्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए ज्वलंत विषय रखते थे। अप्रैल 1877 में उन्होंने भाषण के लिए विषय रखा — हिन्दुस्तान में बार-बार अकाल पड़ता है जिसमें शूद्र लोग ही सबसे पहले भूखों मरने लगते हैं। इसके कारण क्या हैं? और वे किन उपायों से दूर किए जा सकते हैं? — अकाल के विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों को देखने की नजर में वर्गीय दृष्टि से आर्थिक समस्याओं को देखने की समझ के संकेत मिलते हैं।

दारूबाजी नागरिकों के नैतिक आचरण में बाधक

जोतीराव फुले क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। समाज सुधारक का कार्य अत्यधिक कठिन होता है क्योंकि उसे एक तरफ तो अपने ही समाज व भाइयों से संघर्ष करना पड़ता है तो दूसरी तरफ शासन-सत्ताओं से। शासन सत्ताएं जनता को सुलाकर अपना शासन चलाती हैं। नशा उनके लिए सबसे आसान है, इसीलिए शोषक सत्ता हमेशा इसका सहारा लेती हैं। समाज सुधारकों को बार-बार इसका विरोध करना पड़ा है और नशे में डूबी जनता को उसकी दलदल से निकालने के प्रयास करने पड़े हैं। सावित्रीबाई फुले ने भी इस विषय पर जागरुक करते हुए जनसंवाद किये और जोतिबा फुले ने नशाखोरी के विरुद्ध मोर्चा खोला था।

1880 में जब सरकार ने शराबखानों में बढोतरी की, तो पूना के लोगों में शराबखोरी की लत बढ़ने लगी। इससे बिगड़ रहे माहौल को महसूस करते हुए 18 जुलाई, 1880 को

जोतीराव फुले ने पूना नगरपालिका के कार्यकारी मंडल के अध्यक्ष प्लंकेट साहब को शराबखानों की बढ़ोतरी के विरुद्ध पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि —

"नगरपालिका ने काफी पैसा खर्च करके लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए बहुत बड़ी संख्या में कर्मचारियों की नियुक्तियां की हैं। लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा की दृष्टि से उस तरह का एक स्वतंत्र विभाग भी चल रहा है। फिर भी जिस पूना शहर का शराबखानों से परिचय नहीं था वहीं अब बस्तियों में शराबखाने खुल गए हैं और लोगों के अधोपतन के बीज बोए जा रहे हैं। नगरपालिका का एक उद्देश्य शहर के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। यह सब उसके विपरीत में हो रहा है।

"शराब का व्यसन नागरिकों के नैतिक आचरण में बाधक है। इतना ही नहीं, उनके स्वास्थ्य के लिए भी अतिशय हानिकारक है। मेरा यह मानना है कि बहुत से लोग मेरी बात को अपनी इच्छा से मानते हैं। जब से शहर की बस्तियों में शराबखाने खुले हैं, तब से दारूबाजी इतनी अधिक बढ़ गई है कि उससे अनेक परिवारों का पूरी तरह नाश हो गया है। और यह दुर्गुण शहर में सरेआम हो गया है।

"इस व्यसन के प्रसार से किसी हद तक रोक लगे इसलिए मैं नगरपालिका को ऐसा सुझाव देना चाहता हूँ कि नगरपालिका को इन शराबखानों पर उस मात्रा में कर लगाना चाहिए जिस मात्रा में ये नुकसान करते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि किसी भी नगरपालिका ने ऐसे शराबखानों पर अधिक कर नहीं लगाया उन पर मात्र केन्द्रीय सरकार का कर होता है। इस संबंध में आवश्यकता हो तो नगरपालिका को जानकारी हासिल करनी चाहिए। मेरा यह प्रस्ताव नगरपालिका की आमसभा के समक्ष रखा जाए। मैं आपका बड़ा आभारी रहूँगा।" *(धनंजय कीर - महात्मा जोतीराव फुले, मुंबई, 1968, पृ०185-186)*

गरीबों के गाढ़े पसीने की कमाई उच्च वर्ग पर खर्च

भारत में शिक्षा-प्राप्ति हमेशा विशेष जातियों, वर्गों और वर्णों का विशेष अधिकार रहा है। अंग्रेजी शासन की स्थापना ने शिक्षा के द्वार समाज के सभी वर्गों के लिए खोल दिए। यद्यपि उनका मकसद अपने शासन को सुदृढ़ करना ही था। अंग्रेजी शासन शिक्षा-

नीति पर गहरा मंथन किया। शिक्षा के स्वरूप को लेकर अंग्रेजी अधिकारियों में मत विभिन्नता थी। कुछ अधिकारी देसी भाषा और ज्ञान को प्राथमिकता देते थे तो कुछ ने अंग्रेजी भाषा व ज्ञान को महत्त्व देते थे। तत्कालीन अधिकारी लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा की नींव रखी, जिसका मकसद भारतीयों को सांस्कृतिक तौर पर हीनता का भाव पैदा करना व पाश्चात्य का वर्चस्व स्वीकार करना था। उन की बात भविष्य में सिद्ध हुई।

अंग्रेजी शिक्षा का सबसे अधिक लाभ उच्च वर्ण के लोगों को हुआ। जोतिबा फुले ने निम्न वर्ग की मुक्ति के लिए शिक्षा को अनिवार्य समझते थे। सन् 1882 में हंटर कमीशन के समक्ष दिए गए बयान व अन्य मौकों पर उनके लेखन से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि वे शूद्रों-अतिशूद्रों की शिक्षा के प्रति वे कितने चिन्ताशील थे।

हंटर कमीशन के समक्ष बहुत से लोगों ने निवेदन प्रस्तुत किए थे, लेकिन जोतिबा का इनमें सबसे अलग था। इनके निवेदन में पूरा ध्यान गरीब-वंचित वर्गों की शिक्षा पर था। उन्होंने आम जन में शिक्षा के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए जोर दिया तथा आम वर्ग से शिक्षकों की नियुक्ति की वकालत की। स्कूलों में सुधार के लिए कई सुझाव दिये।

उन्होंने कहा कि सरकार शिक्षा के लिए विशेष लगान एकत्रित करती है, लेकिन बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि वह इसके लिए खर्च नहीं हो रहा। इस प्रान्त के 90 प्रतिशत गांव और लगभग दस लाख बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

जोतिबा ने शिक्षा के ढांचे का वर्ग-विश्लेषण करते हुए लिखा कि सरकार कुछ मधुर सपने पाले हुए है कि उच्च वर्ग के लोग शिक्षा प्राप्त करके निम्न वर्ग लोगों का शिक्षित करेंगे। इस सोच के साथ लगान के रूप में एकत्रित की गई गरीबों के गाढ़े पसीने की कमाई को उच्च वर्ग के लोगों पर खर्च करती है। उच्च वर्ग के बच्चे स्कूलों से शिक्षा पाकर अपनी व्यक्तिगत उन्नति करते हैं, लेकिन समाज की उन्नति में कोई भूमिका नहीं निभाते। शिक्षा और संस्कृति उच्च वर्ग से निम्न वर्ग में रिसती जाएगी, जोतिबा को यह बात स्वीकार नहीं थी।

उन्होंने शिक्षा में सामाजिक भेदभाव को उद्घाटित करते हुए कहा कि अधिकांश शिक्षक ब्राह्मण जाति से हैं और वे पूरी तरह से प्रशिक्षित भी नहीं हैं। शूद्र-अतिशूद्रों को शिक्षित करने में कोई उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। स्कूल अध्यापक बनना उनके लिए रोजगार का साधन मात्र है। उनके मन में निम्न वर्गों के प्रति स्थायी घृणा है। इसके रहते वे आम जनता को कभी शिक्षित नहीं करेंगे।

पददलितों को मनुष्यता के अधिकार दिलाना ही धर्म

गरीब वंचित वर्ग के लोग जोतिबा का बहुत आदर करते थे। साठ वर्ष पूरे होने पर जोतिराव को भव्य नागरिक अभिनन्दन किया, जिसमें समाज निम्न वर्ग के लोग विशेषतौर पर मौजूद थे। महात्मा की पदवी से विभूषित करके शोषितों-पीड़ितों के सच्चे नेता को अपनी भावनाएं अर्पित की।

11 मई 1888 को बंबई के मांडवी कोलीवाड़ा सभागृह में जोतिबा फुले का भव्य नागरिक अभिनंदन किया गया। इस सभा में शिक्षित व धनी लोग थे तो दरिद्रता से पीड़ित हजारों पददलित शामिल थे। बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ को भी बुलाया गया था, पर वे किसी कारण से आ नहीं पाए। उन्होंने संदेश भिजवाया था कि जोतिबा को 'भारत के बुकर टी वॉशिंगटन' की उपाधि से विभूषित किया जाए।

राव बहादुर विट्ठलराव वंडेकर ने पुष्पमाला अपने हाथों में लेकर कहा कि 'जोतिबा की तपस्या के कारण महाराष्ट्र के स्त्री-पुरुषों को मानवी अधिकारों, जागृति और चैतन्य की स्थायी धरोहर मिल गई है। इसलिए जोतिबा ही सच्चे महात्मा हैं। इस जोतिबा को 'महात्मा' की उपाधि से प्रदान कर रहे हैं।

इस अवसर पर जोतिबा ने विनम्रतापूर्वक कहा कि 'मैंने ईश्वर की प्रेरणा से थोड़ा-सा कार्य किया है। मैं आज तक यही मानता रहा हूं कि मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की सेवा है और मैं यह सेवा आगे भी करता रहूंगा। आप सभी लोग सत्यशोधक समाज के कार्य में सहायता देकर उसे बढ़ा रहे हैं, जिन्हें हजारों वर्षों से पददलित समझा गया है, उन्हें मनुष्यता के अधिकार दिलाने को ही मैं धर्म मानता हूं। यही हर एक का कर्तव्य है। मैंने केवल अपना कर्तव्य किया है। यह कोई विशेष कार्य नहीं है।"

कुल्हाड़ी का डण्डा
अपनों का काल

-1-

नारी की कोख से जन्म लेकर
निन्दा करे नारी जाति की ही
मां को ही ऐंठने चाहिएं कान
बाकी बातें हैं सब बेकार

-2-

शूद्र जैसी दीन नारी
बुद्धिहीन करते वार उन पर
निराधार व्यर्थ नारी निंदा
नफरत उसके प्रति केवल यह
निर्भय हो आओ सामने
स्वमत के प्रमाण

सब कुछ न्यौछावर करके जीवन सार्थक करे

सन् 1873 में काशीबाई नाम की विधवा ने एक लड़के को जन्म दिया। फुले दम्पति ने इस बच्चे को गोद ले लिया इसका नाम यशवंत रखा। गोद लिए पुत्र को अपनी चल-अचल जायदाद तथा अपने अन्तिम संस्कार के समस्त अधिकार दिए, जो उस समय एक क्रांतिकारी कदम ही कहा जा सकता है। अपनी संपति का पूरा विवरण देते हुए वसीयत में उन्होंने लिखा कि - इस तरह मेरी अचल संपति है। इसके अलावा मेरे घर में चल संपति भी है। उसकी जानकारी मुझे और मेरी पत्नी को मालूम है। उस सारी जायदाद के हम दोनों मालिक हैं। हम दोनों के बाद हमारा पुत्र यशवंत ही हमारे अचल और चल आदि हर प्रकार की जायदाद का मालिक है और उसके समझदार तथा बालिग होने पर उसको ही उस प्रकार का परंपराधिकार प्राप्त होगा और उसको अपने वंश परम्परा से पूरा उपभोग लेकर अधिकार कायम करना चाहिए। हमारी जायदाद पर हमारे भाई और भतीजा गणपतराव राजाराम फुले आदि किसी का वंश परम्परा से अधिकार या हक या दावा नहीं और मेरी किसी भी प्रकार की जायदाद पर अन्य किसी का भी कोई अधिकार नहीं। हमारे सारे चल और अचल तथा आगे की सारी जायदाद का मालिक हमारा पुत्र यशवंत ही है। फिलहाल वह नाबालिग है। सबब मैं और मेरा परिवार सावित्री उसकी परवरिश करके उसको पढ़ा रहे हैं। उसकी वजह यही है कि

> चिरंजीव यशवंत को भगवान के लिए अपने पूरी तरह से सताए हुए अज्ञानी, दीन, दुर्बल, शूद्रादि-अतिशूद्र मानव भाइयों को उनके मानवी हकों के प्रति जागृत करके उनको धूर्त-पाखंडी-मानवद्रोही आर्यभट्ट ब्राह्मणों के षड़यन्त्र से मुक्त करने के लिए अपना सारा जीवन, अपना सब कुछ न्यौछावर करके उसको अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करनी चाहिए। ... अज्ञानी लोगों की गलत मान्यताओं के अनुसार चिरंजीव यशवंत का विवाह हुआ हो या न हुआ हो, मैं जोतीराव गोविन्दराव फुले और मेरी शादी-शुदा पत्नी सौभाग्यवती सावित्रीबाई पति जोतीराव फुले हम दोनों के मरने के बाद हम दोनों के अंतिम संस्कार और तमाम विधि सत्यशोधक समाज पद्धति के अनुसार करने के लिए केवल चिरंजीव यशवंत राव को ही यह अधिकार है।

जोतीराव अपने विचारों के प्रति इतने प्रतिबद्ध थे कि अपने पुत्र यशवंत राव से बेहद प्यार करते हुए वे उसे सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखना चाहते थे अपनी वसीयत में उन्होंने स्पष्ट तौर पर इसे दर्ज किया। उसे अपनी चल-अचल संपति का वारिस घोषित करते हुए उसके उपयोग की दिशा भी बताई। उन्होंने लिखा कि

- मेरे मरने के बाद चिरंजीव यशवंत हमेशा स्कूल में जाकर सही अध्ययन करके मैट्रिक में उत्तीर्ण होकर बाकी की उपाधियां प्राप्त करने के लिए प्रयास करने के बजाए अवारागर्दी करने लगे तो मेरी पत्नी सत्यशोधक समाज के सदस्यों के बहुमत से चिरंजीव यशवंत को मेरे हिस्से के पूना के मकान नंबर 394 का या खानवड़ी के मेरे हिस्से की हवेली, बाग और कुएं का हिस्सा देकर बाकी सारी जायदाद में उसका हिस्सा खारिज करे और समाज के सदस्यों के बहुमत से यशवंत के स्थान पर माली, कुनबी, धनगर आदि शूद्र समाज का जो भी कोई लड़का सारे लड़कों में होनहार व लायक हो, उसे मेरी जायदाद का हकदार बना करके उससे सारे कार्य करवा ले।

अमीर लोग इस देश की जनता के सच्चे प्रतीक नहीं

— 2 मार्च, 1888 में, पूना में, श्री हरि रावजी चिपलूणकर जी ने ड्यूक और डचेस ऑफ कॅनाट के सम्मान में बड़ा भोज दिया। श्री हरि रावजी के मित्र के नाते जोतिबा को भी समारोह में निमंत्रित किया गया। समाज के बड़े-बड़े धनवानों, अफसरों, व्यापारियों और राजा-महाराजा के साथ जोतिबा माथे पर पगड़ी, कांधे पर कम्बल, धोती, बाराबन्दी, डण्डा और फटी पुरानी चप्पल से लैस अपनी परम्परागत पोशाक में उपस्थित थे। उन्हें जब बोलने को कहा गया तो बिना किसी रोक-टोक के सीधे ही ड्यूक को संबोधित कर उन्होंने कहना शुरु किया —

> यहां उपस्थित मेहमानों के कीमती वस्त्रों और उन पर चमचमाते हीरों को देखकर यह न समझना कि हिन्दुस्तान बड़ा सुखी और समृद्ध देश है। सच्चाई कुछ अलग है। ये सोने-चांदी के गहनों से लदे और सुगन्धित वस्त्र पहने हुए अमीर लोग इस देश की जनता के सच्चे प्रतीक नहीं हैं। यहां के अधिकांश किसानों के ये प्रतिनिधि नहीं हो सकते। सच्चा हिन्दुस्तान देहातों में है। वहां के लोग निर्धन, भूखे, नंगे, बेघर रहते हैं। नंगे पैर ही चलते हैं। ....
>
> ... अगर राजकुमार सच्चा हिन्दुस्तान ही देखना चाहते हैं, तो वे पास-पड़ोस के देहातों में जाएं, वहां की अज्ञानी जनता की भीषण दरिद्रता को प्रत्यक्ष देखें। अछूतों की झुग्गी-झोंपडियों में भी आप जाएं और यह देखें कि कूड़े करकट से भी बदतर हालत में उनकी बस्तियां कैसे जी रही हैं...
>
> ... यह सब प्रत्यक्ष देखकर राजकुमार और उनकी पत्नी जाकर महारानी विक्टोरिया को यह कहें कि हिन्दुस्तान की गरीब जनता दरिद्रता की खाई में सड़ रही है। उसे अपने उद्धार के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

उपस्थित सभी लोग, राजपुत्र और उनकी पत्नी जोतिबा की यह स्पष्टोक्ति सुनकर अवाक् रह गये। (डा. मु.ब. शहा, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा फुले, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002-पृ.-38)

सावित्रीबाई फुले ने अपने पति को मुखाग्नि दी

सन् 1887 में जोतिबा फुले को अंधरंग हो गया। सावित्रीबाई फुले ने उनकी खूब सेवा की। सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ताओं ने उनका इलाज करवाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। इसी दौरान उन्होंने सार्वजनिक सत्यधर्म नामक पुस्तक की रचना की। इस दौरान अपने मित्र ज्ञानोबा ससाणे से अपनी बेटी राधा के साथ यशवंतराव के विवाह का प्रस्ताव रखा। जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 28 नवम्बर 1890 ई. को जोतिबा की मृत्यु हो गई।

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले की अपनी संतान नहीं थी। इन्होंने अपने बाल हत्या प्रतिबंधक गृह में पैदा हुए बच्चे को गोद लिया था और इसका नाम यशवंत रखा था। जोतिबा फुले ने अपनी वसीयत में उत्तराधिकार के समस्त अधिकार यशवंत को दिए थे। 10 जुलाई, 1887 को अपनी वसीयत में उन्होंने लिखा था कि "मैं जोतीराव गोविंदराव फुले तथा मेरी विधिवत पत्नी सौभाग्यवती सावित्रीबाई जोतीराव फुले इन दोनों की मृत्यु के बाद सारे अंतिम संस्कार सत्यशोधक समाज के अनुसार करने का अधिकार केवल यशवंत को होगा। हम दोनों के शव हमारे पुरखों की परम्परानुसार नमक के साथ दफन किये जाएँ। आर्यभटों की बातों में आकर दहन कभी न किया जाए। अगर हमारी मृत्यु के समय चिरंजीव यशवंत मौजूद न हो,

तो सत्यशोधक समाज के किसी भी उपस्थित सदस्य को हमारे अंतिम संस्कार करने का अधिकार होगा।”

नगरपालिका के अधिकारियों ने आवासीय भूमि पर शव को दफ़नाने की अनुमति नहीं दी इसलिए शव-दाह किया गया। यशवंत भी अंतिम संस्कार नहीं कर सका क्योंकि जोतिबा फुले के भतीजे (भाई के लड़के) ने यशवंत को दत्तक पुत्र बताकर 'तित्वा' (मिट्टी का छोटा घड़ा) उठाने पर विवाद किया और रक्त संबंधी होने के कारण इसे निभाने का दावा किया। एक परंपरा यह थी कि जो व्यक्ति अंतिम यात्रा में 'तित्वा' उठाकर चलता, वही मृतक का उत्तराधिकारी माना जाता था।

सावित्रीबाई फुले स्वयं 'तित्वा' उठाकर चली और अपने पति जोतिबा फुले का अंतिम संस्कार किया। शायद यह भारत की पहली महिला थी जिसने अपने पति को मुखाग्नि दी। जिस समाज में स्त्रियों का श्मशान भूमि में जाना तक वर्जित हो उसमें यह साहसिक कदम ही कहा जाएगा।

धार्मिक अनुष्ठान ठगी का जाल

जोतिबा फुले धार्मिक अनुष्ठानों को वे ठगी का जाल ही कहते थे। नाम स्मरण, जप, तप की अपेक्षा वे कर्मठता में विश्वास करते थे:

बलवंतराव: अनुष्ठान करने से या जप करने से निर्माता को कुछ संतोष होगा या नहीं?
जोतीराव : नहीं, इससे कुछ भी होने वाला नहीं। क्योंकि अज्ञान रूप अंधकार में डूबे हुए बहनों और भाइयों को लूटकर खाने के लिए बहुरूपिया धूर्त ठग ही ऐसा नकली स्वांग रचते हैं। -पृ.-105

धर्म के नाम पर दान-पुण्य के माध्यम से मेहनतकशों के आर्थिक शोषण व लूट के विरुद्ध उन्होंने कहा:

हम सभी लोगों को अपनी-अपनी मेहनत के अनुसार उन वस्तुओं को बरतने की शुरूआत करनी होगी। इससे सारी दुनिया के मानव समाज में किसी प्रकार का फालतू टकराव नहीं पैदा होगा। यहां हम सभी लोग बहन-भाइयों की तरह एक-दूसरे से व्यवहार करने लगेंगे, सभी मानव प्राणी सुखी होंगे और प्रत्यक्ष में निर्माता की सत्ता कायम होगी, उसका राज कायम होगा। (जोतीबा फुले रचनावली भाग 2, पृ.-104)

जोतिबा फुले का साहित्य

जोतिबा ने साहित्य की रचना के दो मकसद थे। एक तरफ जनता को जागृत करके ब्राह्मणवादी-शोषण से मुक्ति दिलाना तथा दूसरा उपेक्षित वर्ग की ओर अंग्रेज सरकार का ध्यान आकर्षित करना ताकि वह इनके लिए शिक्षा आदि की व्यवस्था कर सके। इस मंतव्य को 'ब्राह्मणों की चालाकी' काव्य रचना की प्रस्तावना में उद्घाटित किया है। इसमें लिखा कि 'हमारे देश में ब्राह्मणों का कितना महत्व है और वे लोग धर्म के नाम पर आम लोगों पर कितना अन्याय करते हैं, इस बात को सभी लोग जानते हैं। यह अनुभव करते हुए भी कोई यह कहेगा कि इस किताब को लिखने की क्या आवश्यकता है, तो ऐसे व्यक्ति को यह जवाब दिया जा सकता है कि ब्राह्मण लोग सभी जातियों के साथ अपना षड़यंत्र एक जैसा नहीं चलाते। कुनबी, माली आदि शूद्र लोगों में उनकी पुरोहितगीरी बहुत चलती है, लेकिन यह बात अन्य जाति के लोगों को, खासकर आजकल के प्रगतिशील लोगों को मालूम नहीं। जो लोग पढ़-लिख गए, जिन्होंने अपना विकास किया, उनमें ब्राह्मणों का, पुरोहितों का महत्व दिन-ब-दिन कम होता जा रहा है। लेकिन यह बात आज शूद्र जातियों में नहीं है। उनके घरों में आज भी बाजीराव के काल की पुरोहितशाही राज कर रही है। ऐसे लोगों को इस गुलामी से मुक्त करने के लिए जोतिबा ने यह छोटा सा प्रयास किया है। उनका इसमें दूसरा उद्देश्य यह भी है कि हमारी जाग्रत अंग्रेज सरकार को अपनी प्रजा के इस बहुत ही उपेक्षित वर्ग को शिक्षित करना चाहिए और उनकी आंखों की नींद समाप्त कर देनी चाहिए। उनको ब्राह्मण पुरोहितशाही की दासता से मुक्त करना चाहिए। इसलिए यदि यह उद्देश्य सफल हुआ, तो ग्रंथरचियता

जोतिबा फुले का साहित्य

तृतीय रत्न नाटक (1855)
शिक्षा विभाग के ब्राह्मण अध्यापक का पंवाडा (1869)
ब्राह्मणों की चालाकी (1869)
छत्रपति शिवाजी राजे भोंसले का पवाड़ा (1869)
गुलमगिरी (1873)
पूना सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट (1877)
हंटर शिक्षा आयोग के समक्ष बयान (1882)
किसान का कोड़ा (1883)
इशारा (1885)
ग्राम जोशी के संबंध में (29 मार्च 1886)
सत्यशोधक समाज के लिए मंगलगाथा और पूजाविधि (जून, 1887)
अखण्डादि काव्य रचना
सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक (1891)

की मेहनत सफल होगी।' (रचनावली, भाग-1, पृ.-95)

फुले ने ब्राह्मणों के सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती दी। उन्होंने ब्राह्मणी संस्कृति के समानान्तर शूद्र संस्कृति का निर्माण किया। ब्राह्मणी देवी-देवताओं के विपरीत शूद्रों के स्थानीय देवी-देवताओं को स्थापित किया। खंडोबा, महिषासुर, जोतिबा की कल्पना की। परशुराम, वामन के विपरीत बलि राजा को स्थापित किया। जोतिबा ने ब्राह्मणी ग्रंथों की सत्ता को चुनौती दी। दलित जनता में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए अपने नायकों पर रचनाएं लिखीं।

समाज में आमूल चूल परिवर्तन करना चाहते थे। वे आम लोगों से संवाद करना चाहते थे। जोतिबा फुले साधारण जन की भाषा में सरल ढंग से उपयोगी विषय प्रस्तुत करते थे। भाषा के मामले में पूरी तरह सचेत थे। उन्होंने अपनी पुस्तकों की भूमिका में इस बात को पूरी तरह से लिखा है।

सत्यमेव जयते

जोतिबा के लिए सत्य सबसे प्रिय शब्द महत्वपूर्ण है। उन्होंने सत्य को ही धर्म की संज्ञा दी। सत्य के उदय से ही झूठ-पाखंड-अंधविश्वास-अंधश्रद्धा से छुटकारा मिलता है :

सत्योदय होते ही रुक गई वेदमति।
देखते ही सारी झूठी सिद्ध हुई स्मृति।।
सत्य तेरी महिमा सुनकर पुराणों को।
मुंह हो गए काले किया काले करतूतों को।।
देखकर तुझे हक्के-बक्के होते हैं पाखण्डी।
लज्जित होकर नीचे डालते कंधी।।
कृपा तेरी होती मूढ़ जनों पर।
भूदेव डरते मन में हाथ माथे पर।।
कृपा का सागर है तू सत्य जान इसे।
मुक्त किया हमें ब्रह्मजाल से।।
तेरी कृपा से हमने अपनी राह को पहचाना।
महत्व माता-पिता की सेवा का पहचाना।।
जयकार जयकार मेरे आदिसत्य का।
तेरी सत्ता से साक्षात्कार होगा उत्पन्नकर्ता का।।

रचनावली-2, पृ.-89

उनकी भाषा में व्यंग्य की तीखी मारक शक्ति थी। उनकी भाषा आग उगलती थी। सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करते समय वह धधकने लगती थी। अपने विरोधियों पर वे कटु होते थे और उनकी भाषा में स्वत: ही कर्कशता आ जाती थी। इनकी भाषा में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग है, जो उनकी भाषा को जीवंत बनाता है।

जोतिबा ने साहित्य की रचना सौन्दर्य के लिए नहीं की थी, बल्कि लोगों तक अपनी बात पहुंचाना ही उनका मकसद था। उसमें वे कामयाब भी हुए। दो चरित्रों के बीच

में सीधे सीधे संवादों के जरिये अपनी बात को आगे बढ़ाने की तकनीक का प्रयोग उन्होंने रचनाओं में किया है। उनकी शैली भी बातचीत की थी। दो पात्र परस्पर बातें करते जाते हैं और विषय स्पष्ट होता जाता है। इस ढंग से जितने प्रश्न अथवा शंकाएं किसी विषय से संबंधित हो सकती हैं, उनका समाधान भी साथ-साथ ही होता जाता है। संवादों की शैली में गंभीर से गंभीर विषय भी सरल हो जाता है। जिसे आम आदमी भी आसानी से समझ लेता है।

जोतिबा फुले को अपने पाठकों के ज्ञान के स्तर का अहसास था। उनकी सुविधा के लिए विषय को अनुभागों में बांटकर लिखा है। यह उनकी रचनाओं की लेखन-योजना का हिस्सा है। वे अपने विषय से नहीं भटकते, जिस विषय का वे वर्णन करते हैं उसी पर केन्द्रित करते हैं। उनकी रचनाओं में अद्भुत वर्णन-क्षमता के दर्शन होते हैं। वे चित्रों का प्रयोग करते हैं।

किसान की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया जो संवेदित करता है। धर्म के नाम पर दान आदि के माध्यम से शोषण, सूदखोरी-महाजन, कुलकर्णी की रिश्वत को उसका कारण ठहराया। शूद्रों व अतिशूद्रों की दशा, सामाजिक भेदभाव, ब्राह्मणों की धूर्तता और चालाकी को दर्शाया है।

जोतिबा की रचनाएं दलित साहित्य का आदि स्वर है। जिसमें भेदभाव,संघर्ष, चेतना, मेहनतकश की महत्ता का चित्रण है। इसमें कोई भक्ति नहीं है। दलित जनता में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए अपने नायकों पर रचनाएं लिखीं।

तृतीय रत्न (1855)

जोतिबा की पहली रचना तृतीय रत्न नामक नाटक है। यह लोक-शैली में रचित एक प्रचार नाटक (एजिटप्राप) है। इसमें रंगमंच के भारी ताम-झाम की आवश्यकता नहीं होती। निरक्षर समाज में नाटक जनता को जागृत करने का सबसे कारगर माध्यम की है। जोतिबा की जनता से संवाद की अभिलाषा ही इसकी रचना प्रेरणा है। इस नाटक में जोतिबा ने ब्राह्मणों-पुरोहितों द्वारा शूद्रों के शोषण, ब्राह्मणों के नैतिक पतन के का चित्र खींचा है, जो उस समय के समाज में निस्संदेह बहुत ही साहस का काम था।

ब्राह्मण-पुरोहित भिक्षा मांगने के लिए शूद्र के घर आता है। गृहिणी को गर्भवती देखकर उसके होने वाले शिशु के अनिष्ट की आशंका करके उसके भविष्य के प्रति उसे भयभीत करता है। अपने शिशु के प्रति ममतामयी मां के भय को देखकर अनिष्ट को दूर करने के उपाय के तौर पर ब्राह्मण-भोज, दान आदि के लिए प्रेरित करता है। ब्राह्मण द्वारा

बताए उपाय को करने के लिए किसान कर्ज लेता है। बहुत ही रोचक ढंग से दर्शाया है कि ब्राह्मण उसे ठग लेता है।

किसान का वास्ता ईसाई तथा मुसलमान को लाकर धर्मों के बीच बहस करवाते हैं। जिससे किसान को ब्राह्मण की चालाकी-धूर्तता का पता चलता है। नाटक में स्थापित होता है कि अज्ञानता के कारण किसान का शोषण हो रहा है तथा सरकारी स्कूलों में ब्राह्मण अध्यापकों का शूद्रों के प्रति भेदभाव और पक्षपात के रवैये के कारण उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं है।

अपने इस मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग की गई नाटकीय युक्तियों से जोतिबा के सृजनात्मक लेखक की क्षमता सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। विदूषक के माध्यम से ब्राह्मणों के आचरण व विचारों पर कटाक्ष से कि दर्शकों व पाठकों को उनकी धूर्तता, चालाकी, छल, पाखण्ड स्पष्ट तौर पर समझ में आता है।

छत्रपति शिवाजी का पंवाडा (1869)

महाराष्ट्र में शिवाजी प्रेरणादायी महापुरुष हैं। जोतिबा ने 'शिवाजी का पांवडा' नामक काव्य जीवनी लिखी। शिवाजी की बहादुरी व समझदारी को वर्णित करते हुए ब्राह्मणों ने उसे किस तरह से अपने चगुंल में ले लिया इस बात का खुलासा भी इस कविता में किया गया। उन्होंने शिवाजी को जनता का राजा माना और लोक-हृदय में उनकी पहचान को बढ़ावा दिया। "शिवाजी की कहानी शूद्र माने गये क्षत्रियों के महापराक्रम की कथा है, वे ब्राह्मण पेशवाओं के मालिक थे। कुनबी, माली, महार, मांग जैसे आज पाताल में गाड़े गये क्षत्रिय जनों को अपने ही वंश के इस महापराक्रमी राजा की कथा ज्ञात हो, इसलिए जाति से शूद्र यह किसान चारण उसे जनसाधारण की भाषा में लिख रहा है, ऐसा जोतीराव ने कहा है। "शिवराज भूषण" और शिवबानी की रचना करनेवाला भूषण ब्राह्मण था। इस पँवाड़े की रचना करनेवाला चारण "कुलवाड़ी" याने ज़मीन कसनेवाले समाज का प्रतिनिधि है। कुल आठ भागों में होनेवाला यह पँवाड़ा शिव चरित्र की व्यापकता और कर्तृत्व संपन्नता को ओजस्वी तथा प्रसारित भाषा में व्यक्त करता है।" (महात्मा फुलेः साहित्य और विचार, महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति, महाराष्ट्र शासलन, मुंबई, प्रथम संस्करण, पृ.- 233)

इसमें शिवाजी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है और जोतीबा के समय के अन्तर्विरोध भी उद्घाटित होते जाते हैं।

अभंग

सत्ता तेरी रानी ताई। हिन्दुस्तानी सचेत नहीं।।
जिधर उधर ब्राह्मणशाही। आंखे खोलो तो सही।।
गांव-देहातों में कुलकर्णी। हैं कलम का कसाई।।
तहसीलों में तहसीलदारी। जैसे अष्ट अधिकारी।।
यमराज जैसा तहसीलदार। शूद्रों को सजा बार-बार।।
धूर्त मुह्रर के आगे। कैसे कलेक्टर की चल सके।।
रेव्हिन्यू की दफतरदारी। ब्राह्मण कितने अधिकारी।।
चारों ओर पंडितशाही। कुनबियों को स्थान नहीं।।
जाती कहे जरा सोचो। दुष्टों से छुटकारा पाओ।।

शिक्षा विभाग के ब्राह्मण अध्यापक का पंवाडा (1869)

जोतिबा फुले ने शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को शिक्षा-विभाग के ब्राह्मण अध्यापक नामक कविता में अभिव्यक्त किया है। इस कविता में उन्होंने शिक्षा-प्रणाली छः घटकों को ज्ञान प्राप्त करने वाले यानी विद्यार्थियों, ज्ञान देने वाले यानी शिक्षकों, पाठ्यक्रम, शिक्षा का ढंग, शिक्षण संस्थाओं यानी स्कूल-कालेज आदि तथा शिक्षा की उपयोगिता पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

इसमें ब्राह्मण अध्यापक के बारे में विस्तार वर्णन किया है कि ब्राह्मण अध्यापक निम्न जाति के बच्चों के स्कूल में भेदभाव करता है। निम्न जाति के लोग मेहनत करते हैं, लेकिन ब्राह्मण उनको पढ़ाते नहीं हैं। उनसे छूआछूत मानते हैं, दूसरी ओर अंग्रेजों से हाथ मिलाते हैं।

शिक्षा-व्यस्था पर ब्राह्मणों का वर्चस्व है। आध्यापक से लेकर अधिकारी तक ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण शिक्षक झूठी रिपोर्ट बनाते हैं और अपना रोजगार बनाए रखते हैं। स्कूल के शिक्षक अखबार पढ़ते रहते हैं, उनकी निम्न जाति बच्चों को शिक्षा देने में कोई रूचि नहीं, वे खानापूर्ति के लिए उनका दाखिला करते हैं। उनके मन में निम्न जाति के प्रति पूर्वाग्रह हैं। वे निम्न जाति के बच्चों को शिक्षा के प्रति निरुत्साहित करते हैं। कहते हैं कि उनकी पढ़ने में रुचि नहीं है और न ही उनमें क्षमता है। असल में वे उनको पढ़ाना नहीं चाहते। ब्राह्मण बच्चों को तन्मयता से पढ़ाते हैं, लेकिन निम्न जाति के बच्चों को शारीरिक दण्ड देकर स्कूल छुड़वा देते हैं। जोतिबा का कहना है कि ब्राह्मण शिक्षक निम्न जाति के बच्चों को कभी नहीं पढ़ायेंगे और अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंकते हैं।

ब्राह्मणों की चालाकी (1869)

ब्राह्मणों की चालाकी कविता नौ भागों में विभाजित है। पहले भाग में ब्राह्मणों से पहले यहां शूद्रों का शासन था। यहां के कौन-कौन देवता थे। आर्यों ने आकर अत्याचार किए, उनको गुलाम बनाया और अपने ग्रंथों की रचना की। यह सांस्कृतिक आक्रमण की तरह था कि आर्यों ने आकर स्थानीय देवताओं को उखाड़ दिया और आर्यों के देवता को स्थापित किया।

बच्चा पैदा होने पर उसके अनिष्ट की आशंका से भयभीत करके ब्राह्मण किसानों को, शूद्रों को लूटता है। विवाह के मौके पर, ऋतु शांति के अवसर पर, गृह-प्रवेश के अवसर पर, कथा-सुनाने के बहाने, मृत्यु के अवसर पर, छोटे-बड़े त्योहारों के अवसर पर ब्राह्मण शूद्रों से दान के नाम पर किस तरह से ठगते हैं, इसका खुलासा किया है। ब्राह्मण जिस तरह की क्रियाएं करते हैं, उनका वर्णन तो किया ही है, साथ में भोले लोगों को किस तरह से अपने जाल में फंसाते हैं उसका बहुत ही विश्वसनीय विवरण दिया है।

गुलामगिरी (1873)

गुलामगिरी जोतिबा की प्रसिद्ध पुस्तक है। इसके उद्देश्य के संबंध में प्रस्तावना में उन्होंने लिखा कि “सैंकड़ों साल से आज तक शूद्रादि-अतिशूद्र समाज, जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार जुल्म और शोषण के शिकार हैं।...ये लोग अपने-आपको ब्राह्मण-पंडा-पुरोहितों की जुल्म-ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर सकते हैं, यही आज हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। यही इस ग्रंथ का उद्देश्य है।”

उन्होंने गुलामगिरी पुस्तक को अमेरिका के मुक्तिकामी संघर्ष के योद्धाओं को समर्पित किया कि यूनाइटेड स्टेट्स के सदाचारी जनों ने गुलामों को दासता से मुक्त करने के कार्य में जो उदारता, निष्पक्षता उवं परोपकार वृत्ति दिखलाई उस हेतु उनके सम्मानार्थ यह छोटी सी पुस्तक मैं उन्हें प्रीतिपूर्वक भेंट करता हूं एवं आशा करता हूं कि मेरे देशवासी बन्धु अपने भाई-बन्धुओं को ब्राह्मणों की गुलामी से मुक्त करने हेतु उस प्रशंसनीय कार्य का अनुकरण करेंगे।

अंग्रेजी शासन भी ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों-अतिशूद्रों के शोषण को जान सके, इसलिए फुले ने ‘गुलामगिरी’ की प्रस्तावना अंग्रेजी में भी लिखी। प्रस्तावना में ब्राह्मणों के शोषण का विस्तार से वर्णन किया गया है। उनका मानना है कि ब्राह्मणों ने पहले तो शूद्रों-अतिशूद्रों को सत्ता से बेदखल किया। फिर उनको मानसिक तौर पर गुलाम बनाने के लिए

ग्रंथों की रचना की, जिसमें ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बताया और शूद्रों को उनकी सेवा करने के विधान किए गए। इन ग्रंथों को ईश्वरीय रचना कहकर धर्म से जोड़ दिया। धर्म के नाम पर शूद्रों-अतिशूद्रों को मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया। उनको अपवित्र कहकर सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत कर दिया और अस्पृश्यता की अमानवीय परंपरा उन पर लाद दी गई।

'गुलामगिरी' सोलह अध्यायों में विभाजित है। यह जोतिराव और धोंडीराव संवाद है। धोंडीराव विभिन्न विषयों पर प्रश्न पूछते हैं और जोतीराव उनका उत्तर देते जाते हैं। शूद्रों-अतिशूद्रों को मानसिक तौर पर गुलाम बनाने के लिए पौराणिक आख्यानों की रचना की और कथाओं-कीर्तनों, अनुष्ठानों आदि के माध्यम से इन्हें प्रचारित किया गया। शताब्दियों से इन्हें सुनते-सुनते शूद्र-अतिशूद्रों की मनोचेतना में गहरे में बैठ गए हैं और उनके कार्य-व्यवहार को संचालित कर रहे हैं। जब तक इन पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जाता। इन शास्त्रों की सत्ता को शूद्रों की मानसिक से निकाला नहीं जाता, तब तक वे गुलामी से छुटकारा पाने के संघर्ष में शामिल नहीं होंगे। गुलामी से आजादी का अर्थ है मानसिक तौर पर आजादी। इसलिए जोतिबा ने हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं और उनसे जुड़ी पौराणिक कथाओं की बुद्धिवादी ढंग से विचार किया। उनके ईश्वर, देवी-देवता, पौराणिक आख्यान आदि पर हमला बोला।

इसके मुकाबले में स्थानीय देवी-देवताओं को स्थापित किया। ब्राह्मणी देवी-देवता व स्थानीय देवताओं में संघर्ष का वर्णन किया।

हर मनुष्य को आज़ाद होना चाहिए, यही उसकी बुनियादी ज़रूरत है, जब व्यक्ति आज़ाद होता है, तब उसे अपने मन के भावों और विचारों को स्पष्ट रूप से दूसरों के सामने प्रकट करने का मौका मिलता है, लेकिन जब उसे आज़ादी नहीं होती, तब वही महत्त्वपूर्ण विचार, जनहित का होने के बावजूद दूसरों के सामने प्रकट नहीं कर सकता, और समय गुज़र जाने के बाद वे सभी विचार लुप्त हो जाते हैं।

⌘⌘

आजाद होने से मनुष्य अपने सभी मानवीय अधिकार प्राप्त कर लेता है और असीम आनन्द का अनुभव करता है। सभी मनुष्यों को मनुष्य होने के जो सामान्य अधिकार इस सृष्टि के नियंत्रक और सर्वसाक्षी परमेश्वर द्वारा दिये गये हैं उन तमाम मानव अधिकारों को ब्राह्मणपण्डा-पुरोहितवर्ग ने दबोचकर रखा है। अब ऐसे लोगों से अपने मानव अधिकार छीनकर लेने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए।

⌘⌘

शूद्रों के अलग इतिहास व देवताओं की कल्पना की। ब्रह्मा, विष्णु आदि के मुकाबले में खंडोबा, महासूबा, बली, आदि को शूद्रों के देवता के तौर पर स्थापित किया। ब्राह्मणी-परम्परा के समानान्तर शूद्र-परम्परा दर्शाने की कोशिश की।

वर्तमान में अंग्रेजी शासन के परिणाम स्वरुप ब्राह्मणों की जकड़ ढीली पड़ी है। अंग्रेजी शासन की नीतियों का भी ब्राह्मणों को सर्वाधिक लाभ होता है। अंग्रेजी शासन में शिक्षा के क्षेत्र में, सरकारी प्रशासन में ब्राह्मण कर्मचारियों का वर्चस्व है। वे यूरोपियन कर्मचारियों-अधिकारियों को भी बहकाकर शूद्रों का शोषण करते हैं।

भारतीय समाज में शूद्रों और स्त्रियों की तुलना अमेरिका के नीग्रो दासता से करते हुए यहां की गुलामी को नीग्रो की गुलामी से अधिक क्रूर, बर्बर और अमानुषिक ठहराया। नीग्रो गुलामी का आधार धर्मग्रंथ नहीं थे, जबकि यहां धर्मशास्त्र के माध्यम से गुलामी को वैधता दी गई थी। धर्म से जोड़कर दासता को शारीरिक गुलामी से मानसिक गुलामी तक पहुंचाया था। मानसिक दासता ने समाज के शोषित-पीड़ित वर्ग से स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावना को ही समाप्त कर दिया था। इसी के चलते स्त्री और शूद्र का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण करने में सफल हुए।

हन्टर शिक्षा आयोग के सामने निवेदन (19 अक्तूबर, 1882)

हंटर कमीशन के समक्ष बहुत से लोगों ने निवेदन प्रस्तुत किए थे, लेकिन जोतिबा का इनमें सबसे अलग था। इनके निवेदन में पूरा ध्यान गरीब-वंचित वर्गों की शिक्षा पर था। उन्होंने आम जन में शिक्षा के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए जोर दिया तथा आम वर्ग से शिक्षकों की नियुक्ति की वकालत की। स्कूलों में सुधार के लिए कई सुझाव दिये।

इसमें कोई संदेह नही कि जन शिक्षा को बहुत अनदेखा किया है। यद्यपि कुछ साल पहले के मुकाबले अब स्कूलों की संख्या में बढ़ी है, लेकिन आवश्यकता से बहुत ही कम है। सरकार शिक्षा के लिए विशेष लगान एकत्रित करती है, लेकिन बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि वह इसके लिए खर्च नहीं हो रहा। इस प्रान्त के 90 प्रतिशत गांव और लगभग दस लाख बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

किसान का कोड़ा (19 **जुलाई**, 1883**)**

'किसान का कोड़ा' पुस्तक में किसानों की दुर्दशा का मार्मिक विवरण दिया। किसानों के जीवन का विश्लेषण करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुरातन रीति-रिवाजों के पालन, धर्म के नाम पर विभिन्न अवसरों पर पुरोहितों द्वारा शोषण तथा जमींदारों के शोषण व सरकारी कर्मचारियों द्वारा लूट, बेगारी व रिश्वत आदि के कारण ही किसानों की दुर्दशा है।

जीवन का कोई ऐसा अवसर नहीं है, जब किसान से ब्राह्मणों द्वारा दान के नाम पर उसे लूटा न जाता हो। जन्म से लेकर मृत्यु तक इतना लूटा जाता है कि उसका सारा अतिरिक्त धन उसमें चला जाता है, जिसे वह अपने व अपने परिवार के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में खर्च कर सकता था। कई बार तो कर्ज लेकर भी वह धार्मिक कहे जाने वाले कार्यों को करता है। जोतिबा ने इसे विस्तार से बताया और किसानों को इससे बाहर निकलने को कहा। इसीलिए उन्होंने सरल व कर्मकाण्ड विहीन धर्म भी चलाया।

सरकारी असले अमले में ब्राह्मण अधिक थे और जमींदार व साहूकार भी ब्राह्मण थे। साहूकार-जमींदार किसानों को लूटते थे तो सरकारी कर्मचारी भी अपने जाति के लोगों का पक्ष लेते थे और किसानों पर ही जुल्म करते थे। जोतिबा ने बार बार इसीलिए अंग्रेज सरकार से निवेदन किया कि वह किसानी जातियों की जनसंख्या के अनुपात में कर्मचारी रखे। इससे वह अपने वर्ग की समस्याओं को बेहतर समझ सकते थे और किसानों को कुछ राहत मिल सकती है। सरकारी कामकाज में निम्न जातियों की भागीदारी के पीछे उनका यही तर्क था, जिसे उन्होंने अपने ग्रंथों में बार-बार उद्घाटित किया है।

इशारा (1885)

जोतीबा ने ब्राह्मणवाद व धर्म ग्रंथों की आलोचना इसलिए करते थे, क्योंकि वे धर्मग्रंथ किसान व गरीबों का उनके शोषण को वैधता प्रदान करते थे। महाराष्ट्र में अंग्रेजों के आगमन से पहले पेशवाओं का शासन था। इस शासन में ब्राह्मणों को विशेष अधिकार प्राप्त थे। अधिकांश कर्मचारी ब्राह्मण समुदाय से थे और वे अन्य जातियों के किसानों पर भेदभाव करते हुए जुल्म करते थे।

जोतिबा ने —इशारा— पुस्तक की रचना की, जिसमें उन्होंने ब्राह्मणों के जुल्मों-अत्याचारों का विवरण दिया है। उन्होंने लिखा कि — आर्य ब्राह्मण पेशवा के अंतिम वंशज रावबाजी के कार्यकाल का अंत होने तक, किसान लोगों को लगान देने में भूल से थोड़ा भी विलंब होने पर उन्हें धूप में गरदन को घुटनों तक और हाथ के पंजों को पांव की उंगलियों को छूने तक झुककर रहना पड़ता था और उनकी पीठ पर एक बड़ा पत्थर रखा जाता था। कभी उस किसान की पीठ पर उसकी औरत को बिठाया जाता था। नीचे से उसको मिरची का धुंआ दिया जाता था। कभी कभी ऐसा लगता है कि प्रजा को किस तरह से लूटा जाए, उन्हें अत्यधिक दुख कैसे दिया जाए और इसके लिए कौन कौन से तरीके अपनाए जा सकते हैं इस संबंध में ही मनोयोग से धर्मग्रंथों का पठन-पाठन कर रहे थे। प्रजा को दुख देने का मतलब था मारना, पीटना, लूटना या आंतकित करना। प्रजा का अहित करने में ही उनको मजा आता था। प्रजा को वे कूड़ा-करकट, खटमल या जानवर ही समझते थे। उनकी नजर में प्रजा का उपयोग भी क्या था? प्रजा का काम यही था कि राजा और उनकी जाति के लोगों के लिए, उनकी बीवियों के लिए और उनके बाल-बच्चों के लिए खेत से अनाज पैदा करना, कपड़ा बुनना, उनके लिए लहलहाती धूप में खपना और उन्हें ऐशोआराम के लिए जिन-जिन चीजों की दरकार हो, वह सब पैदा करना। इसके अलावा उन्हें दूसरा कोई मानवी अधिकार प्राप्त नहीं था।

गुलामों की स्थिति को ही गुलामगिरी कहते हैं। गुलामगिरी, शूद्रगिरी, स्लेव्हगिरी, सेव्हिड्युल और दासत्व आदि शब्दों का अर्थ एक ही है। जानवरों में गुलामगिरी की प्रथा नहीं होती। यह सिर्फ और सिर्फ ज्ञान रूप धारण करने वाले मनुष्य में ही होती है, जो मनुष्य की जन्मजात स्वतंत्रता को छीन लेती है, मनुष्य के प्रेम को चकनाचूर कर देती है व उसे स्वाभिमानशून्य बना देती है। इसलिए यह नीच और अमानवीय होती है, यह दुष्ट मानव की मूर्ख बुद्धि और पिशाच विचारों की निशानी है।

⌘⌘

भट्ट के देव, धर्म व पुराण हमारे दिमाग में अंधविश्वास पैदा करते हैं और गुलामगिरी को पक्का करते हैं। आर्यभट्ट विप्रों ने हमारे बारे में उलट लिखा है कि हम अपने कुकर्मों के कारण अस्पृश्य हैं, लेकिन पुराणों में जो लिखा है, यह सच नहीं है। असल में ईरानी आर्यद्विज ही कुकर्मी और अस्पृश्य हैं। इनकी गुलामगिरी से बचने के लिए एकजुट होकर कंधे से कंधा मिलाओ और अपने पुरखों की जय जयकार करो।

⌘⌘

इस प्रकार सत्तांध होकर प्रजा से क्रूरतापूर्ण, अमानवी बर्ताव करने वाले, प्रजा को पशु से भी बदतर समझने राजाओं की और उनकी जाति-बिरादरी के लोगों की सर्वकष सत्ता इस देश की प्रजा चल रही थी। यहां का ब्राह्मण-धर्म, उनके धर्म-ग्रंथ, उनके धर्मशास्त्र, उनका ईश्वर, उनकी आत्मा-परमात्मा, उनके देवी-देवता, उनका पुरोहित वर्ग - सभी कुछ प्रजा को शत्रु मानते थे और वे उनसे उसी तरह व्यवहार करते थे। इस देश की प्रजा को सदियों से कोई मानवी अधिकार प्राप्त नहीं था। (जोतिबा फुले रचनावली भाग-2, पृ.-59)

जोतिबा के मन में किसानों की दशा देखकर उनकी बदहाली देखकर ही ब्राह्मणों के प्रति आक्रोश दिखाई देता था। वे किसान को कर्ज में फंसा लेते थे और अत्यधिक ब्याज लगाकर उसका इतना शोषण करते थे कि उसकी जमीन भी चली जाती थी। वे किसान की मजबूरी का फायदा उठाकर पहले तो उसे कर्ज देते और बाद में राक्षस की तरह से पेश आते थे और उनकी चिकनी चुपड़ी बातों में फंसा किसान अपनी जान देकर ही पीछा छुड़वा पाता था।

उस मामूली कर्ज के लिए, सात-आठ रुपये की छोटी-सी उधार रकम के लिए उसका सारा खेत हड़प लिया जाता था। उसके जानवर हड़प लिए जाते थे। कुआं-बाग हड़प लिये जाते थे। अंत में स्थिति ऐसी आती थी कि वह किसान भी न घर का रह जाता था। वह अपने-आपको ही समाप्त कर देने के लिए मजबूर हो जाता था। ... उस समय की सरकार में फरियाद करने की कोई भी गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि उन्हीं के घर में सरकार थी। साहूकार किसान को मारपीट कर जबरदस्ती उसकी फसल छीनकर ले जाते थे। किसान के जानवरों को भगा ले जाते थे और बेच देते थे। उनके संबंधियों को भी तंग करते थे। किसानों की पीठ पर बोझ रखवाते थे। चिलचिलाती धूप में खड़ा करके मिरची की धुआं देते थे। शरीर के नाज़ुक हिस्से को ऐंठते थे और गोल डंडा डालकर उनको अपमानित करते थे। इस तरह उस सरकार में ब्राह्मण कर्मचारी किसानों से लगान वसूल करते समय उनको हर तरह से आतंकित करते थे। (जोतिबा फुले, रचनावली भाग-2 पृ.-68)

सार्वजनिक सत्यधर्म 1891

सार्वजनिक सत्य धर्म की स्थापना की। धर्म को कर्मकाण्डों-पाखण्डों से निकालकर नैतिक व मानवीय सोच प्रदान की। इस पुस्तक में मानव अधिकारों और कर्तव्यों को उद्घाटित किया है।

अखण्डादि काव्य रचना

जोतीबा फुले की 'अखण्ड आदि काव्य रचना' छह विभागों में विभाजित है। पहले विभाग में जीवन में उपयोगी छोटे-छोटे विषयों पर लिखा है। बुद्धिवादी दृष्टि से इन विषयों पर उनके विचारों ने लोगों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया।

विभाग एक में स्वच्छता, सहनशीलता, धैर्य, आत्मालोचना, नीति, विवेक, घर के काम में सावधानी, पाप, पुण्य, तर्क, किस्मत, जन्म, संस्कार, अनुष्ठान, स्वर्ग, अन्नदान, सुख आदि विषयों पर जोतिबा के आधुनिक दृष्टि युक्त संतुलित विचार जनजागरण का माध्यम बने। विभाग दो में गणपति, आर्य ब्राह्मण पंडों की चालाकी, सत्यपाठ, पुरोहित वाणी, पाखंडी गुरु, ब्राह्मणों के भोंदूपन, शूद्रों से फंड इकट्ठा करने के बारे में निषिद्धता, दस्यु का पंवाड़ा, कविताएं हैं। इन विषयों पर तत्कालीन नैतिक-बोध व सामान्य-चेतना में
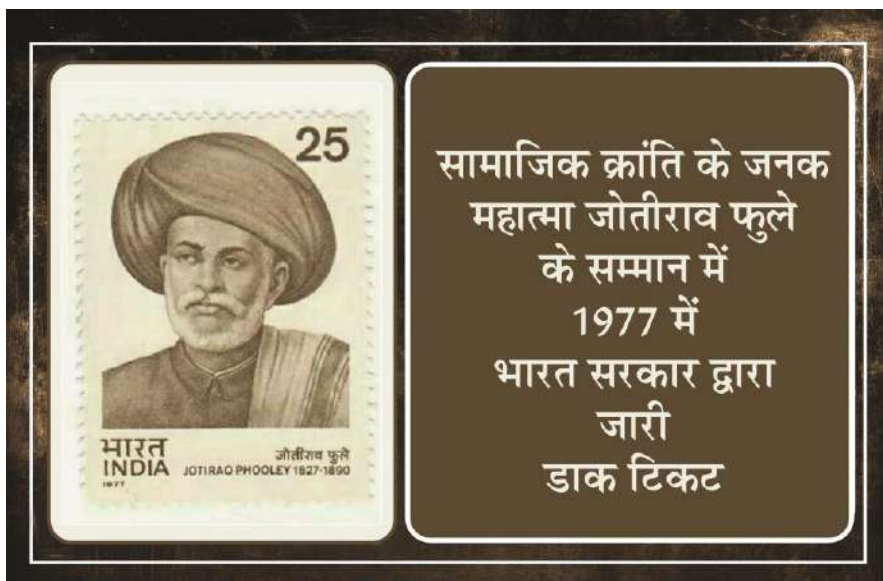
ब्राह्मणवादी विचारधारा का प्रभुत्व था। सामान्य जनजीवन इसी से परिचालित होता था। जन-जीवन से ब्राह्मणवाद को निकालने के लिए इन पर विचार किया।

'कुनबी स्त्री' कविता में किसान स्त्री की दिनचर्या चित्रित की है। किसान स्त्री सुबह से रात तक श्रम करती है। घर का काम करती है, परिवार के लिए रोटी पकाती है, घर की साफ-सफाई करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है, पीने का पानी लेकर आती है, पशुओं के लिए चारा लाती है, अपने पति के साथ खेत में हाथ बंटाती, लेकिन ब्राह्मणवादी विचारधारा उसको हिकारत से देखती है, स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक मानती है।

जोतिबा फुले के भाषण

महात्मा जोतिबा फुले के भाषण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं, जिनमें स्पष्ट तौर पर वैचारिक संघर्ष दिखाई देता है। इनकी चर्चा कम ही हुई है। फुले के ये भाषण जब प्रकाशित (सन् 1856 ई.) हुए थे उस समय शायद ही किसी भारतीय विद्वान, साहित्यकार या समाज सुधारक ने इतनी शोधों का हवाला देते हुए वैज्ञानिक दृष्टि से मानव विकास के बारे में लिखा हो। उनके भाषणों में भारतीय इतिहास लेखन की वर्गीय पक्षपाती दृष्टि और उसके मंतव्यों की बेबाकी से वर्णन है।

महात्मा जोतिबा फुले के चार भाषण हैं - अति प्राचीन काल, इतिहास, सभ्यता, गुलामगिरी। ये भाषण पहली बार 25 दिसंबर 1856 में पूना (महाराष्ट्र) के शिळा प्रकाशन से मराठी में प्रकाशित हुए थे। महात्मा जोतिबा फुले की पत्नी व भारत पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले ने इनका संपादन किया था। श्रीमती मिचेल व रेव्ह. मिचेल ने इसके लिए प्रोत्साहन दिया था। जोतिबा फुले के भाषण सावित्रीबाई फुले ने जिस क्रम में संपादित किए गए थे वह बहुत दिलचस्प है - अति प्राचीन काल, इतिहास, सभ्यता, गुलामगिरी। ये क्रम मानव विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

महात्मा जोतिबा फुले भाषण प्रकाशित हुए उस समय जोतिबा की उम्र महज 29 साल थी। इन भाषणों से पता चलता है कि जोतिबा फुले उस समय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर हो रही शोध से भलिभांति परिचित थे। यूरोप व अमेरिका के वैज्ञानिकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों, विद्वानों के शोध व सिद्धांतों का उल्लेख करते हैं। डार्विन, लिव्ह, प्लूटार्क, टासिटस आदि इतिहासकार, केटो, मेरीयास, सीझर, सिसरो, मेगास्थनीज, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू आदि के विचारों का बार-बार हवाला देते हैं।

इन भाषणों में मानव जाति की उत्पत्ति, जंगली अवस्था से सभ्य-मानव तक मनुष्य के विकास की ओर संकेत करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास, धर्म व मानव जीवन के अनेक पक्षों पर विचार करते हैं। इसीलिए मानव की उत्पति और विकास के संबंध में विभिन्न धर्मों की मान्यताओं को चुनौती देते हैं। वैज्ञानिक शोधों का हवाला देकर ब्राह्मण पुरोहितों व अन्य धर्म पुस्तकों में सृष्टि की उत्पति के बारे में फैलाये भ्रमों को दूर करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय पुराणों में व्यक्त की गई अवैज्ञानिक व अतार्किक धारणाओं व मतों की बखिया उधेड़ते हैं। इतिहास व पौराणिक कथाओं में अंतर करने की दृष्टि विकसित करते हैं। अपने को सर्वोच्च पद पर स्थापित करने के लिए ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा रचित पुराणों को खिचड़ी इतिहास की संज्ञा देते हुए इन्हें सत्य से कोसों दूर मनघडण्त मानते हैं।

यूनान की सभ्यता की रोमन द्वारा तबाही, भारत और अमेरिका की खोज, इंग्लैंड के सभ्य बनने और आर्यों के आक्रमण और शूद्रों-अतिशूद्रों के गुलाम बनाने पर रोशनी डालते हैं। वे इंडिया को बलिस्तान की संज्ञा देते हैं। गुलामगिरी के खात्मे और बलिस्तान यानी शूद्रों-अतिशूद्रों के लोकतांत्रिक शासन की पुनःस्थापना की आशा करते हैं।

इन भाषणों में वैज्ञानिक इतिहास लेखन की नींव डालते हैं। भेदभावमूलक शोषणकारी अमानवीय प्रथाओं, धारणाओं, मान्यताओं की दैवीय व धार्मिक वैधता को

ध्वस्त करते हैं। इसके बरक्स स्वतंत्रता, समता भाईचारे पर आधारित मानवीय समाज की रचना करने का संकल्प लेते हैं। भारतीय इतिहास की जाति-वर्ण के आधार पर गुलामी की उलझन भरी पहेली को सुलझाते हैं और बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा इंडियन मूल के लोगों को किस तरह गुलाम बनाया इसकी स्पष्ट व्याख्या करते हैं।

महात्मा जोतिबा फुले ने जाति की उत्पत्ति व जातिगत उत्पीड़न को नस्ल-आधारित सिद्धान्त का प्रयोग कर ब्राह्मणों की व्याख्या द्रविड़ नस्ल पर कब्जा करने वाले आर्य आक्रान्ताओं के रूप में की। इन आक्रांताओं ने यहां के मूल-निवासियों में फूट डालकर तथा उन पर ताकत का प्रयोग करके अपना गुलाम बना लिया। उनके हंसते-खेलते बलिस्तान राज्य को उजाड़ दिया।

महात्मा जोतिबा फुले अपने भाषणों में बली के राज्य बलिस्तान का बार-बार जिक्र किया है। वे इंडिया को बलिस्तान कहते हैं। इंडियन मूल के लोगों यानी शूद्रातिशूद्रों से बली का संबंध स्थापित करते हैं। बलिस्तान पर गर्व करने और बलिस्तान की स्थापना करने पर भी जोर देते हैं। बलिस्तान की परिकल्पना और उसकी पुनः प्राप्ति का ख्याल कुछ लोगों को खाम ख्याली लग सकती है लेकिन असल में यह निम्न वर्गों की शासन प्राप्त करने की आकांक्षा है जो निरंतर बलवती हो रही है।

वे शूद्रों-अतिशूद्रों को गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का आह्वान करते हुए कहते हैं कि "हमें अपनी गुलामगिरी को नष्ट करने के लिए एक होना पड़ेगा। भट्ट के देव, धर्म व पुराण हमारे दिमाग में अंधविश्वास पैदा करते हैं और गुलामगिरी को पक्का करते हैं। आर्यभट्ट विप्रों ने हमारे बारे में उलट लिखा है कि हम अपने कुकर्मों के कारण अस्पृश्य हैं, लेकिन पुराणों में जो लिखा है, यह सच नहीं है। असल में ईरानी आर्यद्विज ही कुकर्मी और अस्पृश्य हैं। इनकी गुलामगिरी से बचने के लिए एकजुट होकर कंधे से कंधा मिलाओ और अपने पुरखों की जय जयकार करो।"

महात्मा जोतिबा फुले के भाषणों से उनकी विश्व दृष्टि व विचारधारा की समझ स्पष्ट होती है वहीं तत्कालीन समाज में मौजूद बहस के अनेक पक्षों पर उनके विचारों व व्यक्तित्व के अनेक आयाम स्पष्ट होते हैं।

सत्यमेव जयते !

सत्य सबका आदि घर है। धर्म तो है सत्य का वर।
है जगत में सत्य सब कुछ। सत्य ही केवल अमर।
आसरा है सत्य सुख का। शेष तो तम दुःख का।
सत्य है सबसे प्रबलतम। सत्य है सबसे प्रबलतम।

सुख पाने को तड़प रहा तू। तब आश्रय तू सत्य का ले रे।
सत्य स्मरण कर, धैर्य जुटाकर। सुखी बना तू दुनिया को रे।
सब सुख जग में तू पाएगा। तर कर तारेगा सबको रे।
यही ज्ञान है आत्मपरीक्षण। सत्य का लक्षण एक यही रे।

सब कुछ तेरे लिए बनाया। ऐसा मत तू मान रे।
तन भी दिया है। बुद्धि दी है निर्माता ने जान रे।
जग की खातिर देह सुखा दे। सत्य की खातिर सार्थकता दे।
सबका सुख-दुख अपना ही है। यही सदा पहचान रे।

सबका सिरजनहार एक ही। भय उसका मन रखना जी।
रस लेना तुम न्याय भाव से। करना मौज, न लड़ना जी।
धर्म-राज्य का भेद न मानो। प्रभु का सत्य बरतना जी।
जिएँ सब जन सुखपूर्वक। जोती का यही माँगना जी।

आर्यों ने क्षत्रियों को जीता। दास बनाया अपना जी।
"क्षुद्र" कहा तो शूद्र बन गया। इसको ध्यान में रखना जी।
कहा तो छुआछूत का भ्रम फैलाया। रहा शूद्र को सड़ना जी।
नहीं चलेगी मनमानी अब। कहता जोती सुनना जी।

होती क्या है स्वतंत्रता, न जाने, बहुपीड़िता हम स्त्रियाँ।
दूँगा ये अधिकार नारियों को लो ये शपथ तुम यहाँ।
लेकर के आधार सत्य का हम जनहित करें सर्वदा।
करती हैं तब वरण कर-ग्रहण कर, साक्षी रहे सब सदा।

शुभ मंगल सावधान।

मानो तुम आभार बहुत विनत हो माता-पिता के सदा।
मित्रों इष्ट जनों तथा जो देते सहयोग हैं सर्वदा।
पाएँ वृद्ध पंगू जन मदद, बच्चे हों शिक्षा-धनी।
करते हैं हम कुसुम वृष्टि तुमपर, देते हैं करतल ध्वनि।
शुभ मंगल सावधान।
(महात्मा जोतीराव फुले, अनुवाद : पं. वसंत देव)

मानवी अधिकारों से इंकार करने वाले लेखकों व उनकी संस्था से हमारा कोई संबंध नहीं

पूना में 1885 में लेखकों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में न्यायमूर्ति माधव गोविंद रानाडे भी थे। फुले को सम्मलेन में शामिल होने के लिए आंमत्रित किया। उसके उत्तर में फुले ने लिखा कि

“ आपके आंमत्रण के लिए मैं आपका आभारी हूं, लेकिन जो लेखक मानवी अधिकारों से इंकार करते हैं, उनकी संस्था से हमारी संस्था का संबंध कैसे स्थापित हो सकता है? उनके ग्रंथों और हमारे ग्रंथों में जमीन-आसमान का अंतर है। आज के लेखकों के पूर्वजों ने शूद्रों तथा अतिशूद्रों पर बड़ा अन्याय किया है, पर आज के लेखक उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारी मुसीबतें और तकलीफें स्पष्ट दिखाई देने पर भी वे जान-बूझकर उन्हें अनदेखा कर रहे हैं। शूद्रों का शोषण करने वालों पर हमारा विश्वास नहीं है।”

बावनकस्सी

सावित्रीबाई फुले

(जोतिबा फुले के निधन के बाद सावित्रीबाई फुले ने 'बावनकस्सी' नामक कविता लिखी। इसे जोतिबा फुले की काव्य-जीवनी भी कहा जा सकता है। इस कविता में 52 पद हैं। प्रस्तुत हैं इस कविता का अंतिम अंश। जोतिबा के जीवन और विचारों का यह सबसे विश्वसनीय दस्तावेज है)

देखो अंग्रेजी के सत्ताईस साल
जैसे हल सत्ताईस पहेलियां हुई
ऐसा युग सुधार का लोभ हुआ
पुणे में अपने घर जन्मे जोतिबा

।। जोतिबा ।।

महान माता चिमा, पिता गोविंद जी
जिनकी कोख से जन्मे जोतिबा जी
धन्य सती माता धन्य जती पिता
उनकी वंदना करती जोति की पत्नी

नौ महीने बाद मां चिमा चल बसी
शिशु जोति को बड़े संकट ने घेरा
पर उसने मानवीय स्नेह पाया
मिली सुगणा महादेव-माया

विजाति विधर्मी पादरी से ज्ञान मिला
वहां बाल जोति पल बढ़ रहा था
सगुणा दयासागर ने ज्ञान बढ़ाया
उसने लिखना सीखे अक्षर अंक पहाड़े

फिर जोति गांव के स्कूल गया
गुरूजन कभी आधा अधूरा पाठ पढ़ाते
लेकिन दुष्टों ने शिक्षा में भांजी दी मार
सचिव लिजिट ने शिक्षा में किया सुधार

खेती करते जोति, शादी हुई उनकी
लिया अंग्रेजी ज्ञान, शान से पढ़ते
मुझे और आऊ को पढ़ना सिखाया
उन्होंने असामान्य नींव भरी भव्य

सच्चा संपूर्ण ज्ञान लेकर जोति
मन में स्फूर्ति सुदीर्घ सेवा सुचिंतन
लड़कियों शूद्र लड़कों के स्कूलों की
गूंथी ऐसी अपूर्व सुंदर माला

विधर्मी पादरी ने बहुत उत्साह बढ़ाया
पर सयाने स्वधर्मी यातना देते
मुझे निंदते गोबर कीचड़ मारते
ऐसे संकट भी बखूबी निवारते

अपना कुआं महारों को दिया
मानवता का दायित्व उसे सुहाता
दलितों को दिये संदेश सत्यबोध के

जोति युग में हुए अभूत चमत्कार

पथ भ्रष्ट कामिनी गर्भवती हुई
प्रसूतिगृह में अमूल्य सुविधा दी
जचगी, दवा, खाना-पीना,
ऐसी सारी व्यवस्था संभाली सावित्री ने

शिशु आश्रम में पालना झुलाता
ऐसे दिव्य कार्य में तल्लीन जोति
एक रात मारने दो हत्यारे आए
पर जोति के पैरों में दण्डवत हुए

जैसे तुकाराम वैसे संत जोति
ज्ञान अमृत देता रीति अनुसार
बाद में प्रसिद्ध हुए क्रियाशील दार्शनिक
बताते जोति ऐसी रुढियां अवैज्ञानिक

सब को सौंपा सत्यधर्म का दायित्व
कहे ऊंचा व नीचा कोई न होता
कितनी पुस्तक-पुस्तिका लिखी
उसने गीत, काव्य-नाटक किए

कहे जोति, अंग्रेजी मैया की छाती का दूध
पीकर बलवान बनो, अभिजात बनो
प्रयत्न करो शिक्षा के लिए
संसार में शांति स्थापना के लिए

समस्त शूद्रों को व्यर्थ मानते
मुगल इरानी काकशियस आर्य गोरे
ऐसी कल्पना से इतिहास भरा
सत्य असत्य के शोध हेतु बोध प्राप्त करो

।। उपसंहार ।।

पुराण कथा व दर्शन खूब पढ़े
यह इंडिया शूद्र ऐसी व्याख्या उसकी
शूद्रों के लिए जोति जोत की तरह जले
उनकी प्रेरणा कहे जोति पत्नी

बेसहारा दुखी नारियों के रक्षक
कमजोर अज्ञानी लोगों के पुरोधा
जैसा कर्मठ वैसा सच्चा ज्ञानयोगी
नारी-शूद्रों के लिए दुख झेला

भले जन्मा शूद्र माली के रूप में
पर उसे माळी नहीं असली महार मानते
चिरंजीव जोति महान मानव हो गया
प्रणाम मेरा ऐसे जोतिबा को

मन का संकल्प था शानदार गोष्ठी रचाए
लोगों को समझ में आए उसे गाए
मन के संकल्प से सहज काव्य रचा
तुम गाओ, जिससे सत्य पाए

भले ही इससे थोड़ा ज्ञान हो
फिर भी श्रम से ये खरी चीज बनी है
मेरा काव्य मुझे कैसे सत्य बताए
तुम्हीं बताओ मनोहर रमणीय

अनमोल विचार

मनुष्य में कृर्तत्व दैवीय नहीं है वे उसके दीर्घकालीन अनुभवों, दूरदर्शी कोशिशों तथा तीव्र बुद्धि से आई सभ्यता के कारण प्राप्त हुए हैं।

⌘⌘⌘

मनु-विधान के अनुसार शूद्रों-अतिशूद्रों द्वारा विद्या-ज्ञान हासिल कर कोई उद्योग-धंधा करना, धन संपति अर्जित करना आज तक वर्जित था। इसलिए वे अज्ञानी व दरिद्र होते गए, पशुओं की तरह रहने की आदत बन गई और गुलामगिरी में ही संतुष्ट रहने को पुण्य समझने लगे। अब हमें अंग्रेजी विद्या सीखकर ज्ञान बढ़ाते हुए अपनी व अपने बलिस्तान की शानको भी बढ़ाना चाहिए।

⌘⌘⌘

शूद्रों फटाफट जाग जाओ, विद्या सीखने की जल्दी करो और हजारों साल की पशुतुल्य जिंदगी को फेंक दो और सभ्य मनुष्य की तरह जीने का संकल्प करो।

⌘⌘⌘

हम सभी को एक होकर अपने ऊपर लादे गए शूद्रत्व और भट्ट गुलामगिरी को खत्म करना होगा।

⌘⌘⌘

ब्राह्मणधर्म, उनके धर्मग्रंथ, उनके धर्मशास्त्र, उनका ईश्वर, उनका आत्मा-परमात्मा, उनके देवी-देवता, उनका पुरोहित वर्ग सभी कुछ प्रजा को शत्रु मानते थे और वे उनसे उसी तरह से व्यवहार भी करते थे। इस देश की प्रजा को सदियों से कोई मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके सभी मानवीय अधिकार छीन लिये गये थे। उन्हें इस देश के नागरिक होने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था।

बगैर मेहनत के उनके पसीने से प्राप्त कमाई पर बगैर किसी रोक-टोक के गुलछर्रे उड़ाने का मौका मिलेगा। अपनी इस चाल, विचारधारा को कामयाबी देने के लिए जातिभेद की फौलादी ज़हरीली दीवारें खड़ी करके उन्होंने इसके समर्थन में अपने जाति स्वार्थसिद्धि के कई ग्रंथ लिख डाले।

⌘⌘⌘

ब्राह्मणपण्डा-पुरोहितों ने शूद्रादि में आपस में नफरत के बीज जहर की तरह बो दिये और खुद उन सभी की मेहनत पर ऐशाआराम भोग रहे हैं।

⌘⌘⌘

भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास तब तक नहीं होगा, जब तक खान-पान एवं वैवाहिक संबंधों पर जातीय बंधन रहेंगे।

⌘⌘⌘

मनुष्य आजाद होने से वह अपने सभी मानवीय अधिकार प्राप्त कर लेता है और असीम आनन्द का अनुभव करता है। सभी मनुष्यों को मनुष्य होने के जो सामान्य अधिकार इस सृष्टि के नियंत्रक और सर्वसाक्षी परमेश्वर द्वारा दिये गये हैं उन तमाम मानव अधिकारों को ब्राह्मणपण्डा-पुरोहितवर्ग ने दबोचकर रखा है। अब ऐसे लोगों से अपने मानव अधिकार छीनकर लेने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए।

⌘⌘⌘

बाल काटना नाई का धर्म नहीं, धंधा है तो पूजा-पाठ ब्राह्मण का धर्म नहीं धंधा है।

⌘⌘⌘

समाज के विकास के लिए यह ज़रुरी है कि समाज का संगठन ऐसा हो कि उसके सभी सदस्यों को स्वतंत्रता और समानता के अधिकार मिले और उनके बीच भाईचारा हो।

⌘⌘⌘

विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड, धार्मिक अनुष्ठान भोली-भाली जनता को लूटने के लिए बनाये गये है। यह एक पुश्तैनी धार्मिक लूट है। जाति और धर्म का भ्रमजाल अन्याय और शोषण की प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए फैलाया गया है।

⌘⌘⌘

"सभी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष जन्म से समान होते है। इसलिए उनके साथ किसी प्रकार का भेद-भाव का व्यवहार मानवता और नैतिकता के खिलाफ है।

⌘⌘⌘

जब तक समाज में प्रचलित वर्ण-धर्म और जातिप्रथा का उन्मूलन नहीं किया जाता और समाज का संगठन समानता के आधार पर नहीं किया जाता, जब तक सामाजिक एकता नहीं हो सकती और एकता के अभाव में समाज या देश का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता।

⌘⌘⌘

ईरानी ब्राह्मणों द्वारा ये देवी-देवता, पोथे-पुराण अपनी जीविका के लिए बनाए गए साधन हैं।

⌘⌘⌘

सभ्यता का अर्थ देश में रहने वाले लोगों की स्वतंत्रता है।

⌘⌘⌘

किसानों की दीनता का मूल कारण आर्थिक विषमता है।

⌘⌘⌘

कोई किसी भी धर्म को मानता हो उससे द्वेष ना करो।

⌘⌘⌘

ईश्वर और भक्त के बीच बिचौलिये की जरूरत नहीं।

⌘⌘⌘

सभी नारी-पुरुष मानवी अधिकारों के बारे में विचार मतों को अभिव्यक्त करने के लिए, लिखने के लिए और प्रसिद्ध करने के लिए स्वतंत्र हैं।

⌘⌘⌘

सभी मानव धार्मिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रत रूप से स्वतंत्र हैं।

⌘⌘⌘

सभी नारी-पुरुष सभी मानवी अधिकारों के हकदार हैं।

⌘⌘⌘

सत्य आचरण ही धर्म है।

महात्मा फुले भारत की बुनियादी क्रान्ति के पहले महापुरुष थे. इसलिए वे आद्य महात्मा बुद्ध, महावीर, मार्टिन लूथर, नानक आदि के उत्तराधिकारी थे. उनका यह समर्पित जीवन आज के युग का प्रेरणास्रोत बना है ।

- विश्वनाथप्रताप सिंह

⌘⌘

फुलेजी द्वारा बताया गया सत्य मनुष्य के हज़ार वर्ष के परिश्रम से अर्जित संस्कृति एवं ज्ञान का सार है।

- लक्ष्मणशास्त्री जोशी